प्रकाशक :
लालित्य प्रकाशन
स्टेशन रोड, जोधपुर

प्रथम संस्करण : सितम्बर १९७३

मूल्य : बारह रुपये

आवरण : डॉ. शांति स्वरूप रावत

मुद्रक :
रूपायन प्रेस, बोरूंदा

हां तो — शब्दों के जरिये ही ग्रापसी बात-चीत सम्पन्न होती है, चिट्ठी-पत्री में समाचार लिखे जाते हैं, पत्र-पत्रिकाएं छपती हैं, समस्त प्रशासकीय कार्य शब्दों के द्वारा ही अपनी गति पाता है, राजनैतिक उद्घोषणाएं, पंच-वर्षीय योजनाएं, नेताओं के भाषण शब्दों के द्वारा ही अपना स्वरूप ग्रहण करते हैं, मनुष्य के समस्त ज्ञान-विज्ञान, धर्म, दर्शन व शास्त्रों का शब्दों की कोख से ही आविर्भाव होता है। उपन्यास, कहानी एवं कविता का अस्तित्व भी पूर्ण-रूप से शब्दों पर निर्भर करता है। पर साहित्य में — मुख्यतया कविता जब कलात्मक विधा के रूप में शब्दों 'के बहाने' अपना रूप ग्रहण करती है तो उस में प्रयुक्त शब्द केवल शब्द मात्र ही नहीं रहते — वे शब्दों के अतिरिक्त **'कुछ और'** हो जाते हैं। और शब्दों का यह **'कुछ और'** होना ही कविता की सार्थकता है। शब्दों का अतिरिक्त गौरव है। और इसी **'कितने-कुछ'** की अनुपातिक गहराई व सूक्ष्मता पर ही कविता की श्रेष्ठता निर्भर करती है।

++

पद्य की रचना एक अभ्यास व कारीगरी है। काव्य की रचना एक कला है। प्रेरणा है। प्रतिभा है। कविता का ग्रानंद व सत्य शब्दों **'में निहित'** नहीं होता, शब्दों **'से परे'** होता है। अतिरिक्त होता है। शब्दों के माध्यम से चरितार्थ या व्यक्त होने वाली अन्य विधाओं में शब्द ही **'सब-कुछ'** है। आदि भी, अन्त भी। उन में लक्षित सत्य या झूठ केवल शब्द ही है, जिसे कोई भी शिक्षित व्यक्ति बांच सकता है। पर कविता के सत्य व आनंद का रस ग्रहण करने के लिए केवल शिक्षित होना ही पर्याप्त नहीं है। कविता के शब्दों में

निहित सत्य को केवल बांचने मात्र से काम नहीं चलता, उसे समझना पड़ता है, *उसके मर्म को हृदयंगम करना पड़ता है।* जो कविता का सत्य जितना ही शब्द व भाषा से परे होगा, वह उतना ही गहरा, शाश्वत व श्रेष्ठ होगा।

++

शब्दों के 'बहाने' व्यक्त होने वाली काव्य-कला में शब्द तो एक 'आवरण' मात्र है। शब्दों के उस भीने घूघट के भीतर ही सत्य व सौंदर्य छिपा रहता है। कम से कम आवरण में अधिक से अधिक सत्य को छिपाने की दक्षता में ही कला की श्रेष्ठता अभिनिहित है। कविता में प्रयुक्त शब्दों के घूघट में छिपे मर्म व रस की टीका का अर्थ करने में हजार गुना शब्दों का कूड़ा इकट्ठा किया जाय तो भी वह बात नहीं बन पाती। घूघट में छिपे सत्य को निरावृत करते ही वह लुप्त हो जाता है। इसलिए कविता का अनुवाद सहज-संभव नहीं। वहां शब्दों के बदले शब्दों की हेर-फेर से काम नहीं चलता।

कविता में, शब्दों के मूर्त अवगुंठन से अमूर्त सत्य के इंगित की झलक मात्र ही मिलती है। कविता में प्रयुक्त शब्द अपने अस्तित्व के बहाने चिर मौन को व्यंजित करते हैं। और मौन की यह व्यंजना ही कविता का प्राण है; कला की आत्मा है — जो शब्दों के अवगुंठन में अमूर्त रूप से छिपी रहती है।

++

प्रकृति, वस्तु-जगत एवं भाव-जगत की परिवर्धित अभिज्ञता का जो स्वरूप, ऐतिहासिक क्रम में मनुष्य जान पाया है — जान पायेगा, वही उसका तथाकथित सत्य है। उस तथाकथित सत्य की *अमिट मर्यादा है मनुष्य की अपनी भाषा* — उसकी समूची अभिज्ञताओं का एक मात्र माध्यम। जो नितांत अपर्याप्त है, नितांत भ्रामक है।

यथार्थ के अस्तित्व का स्वरूप तो सर्वत्र एक है, पर उसको व्यक्त करने के लिए विभिन्न भाषाओं में विभिन्न ही शब्द हैं। सूरज, चांद, बादल, पानी, पत्थर, तितली, कबूतर, आम, गुलाब, नाक, दांत इत्यादि — जो हैं सो हैं — पर मानवीय भाषाओं में इनके लिए

अलग-अलग शब्द है। जो किसी दूसरे भाषा-भाषी के लिए सहज बोध-गम्य नहीं। तो शब्द सत्य के प्रतीक नहीं, उसकी विकृति मात्र है। विभिन्न भाषाओं की विभिन्न विकृतियां!

मानवीय अभिज्ञता के इस विकृत माध्यम के द्वारा अभिव्यक्त विकृत सत्य का दर्प पिछली तीन-चार शताब्दियों से मनुष्य को काफी गर्वित करता रहा, पर बीसवीं शताब्दी की ढलान पर आते आते वह बहुत-कुछ ढह चुका है। धूमिल पड़ चुका है।

विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त ज्ञान, विज्ञान, धर्म, शास्त्र, ईश्वर, मीमांसा, पंथ, वाद इत्यादि सब-कुछ सत्य की भ्रान्ति-मूलक स्थापनाएं हैं।

तो मनुष्य के ज्ञान-विज्ञान की समस्त विधाएं—जिन में सत्य का आदि व अन्त केवल शब्द मात्र है—वह सब यथार्थ को जानने की क्रमशः भ्रामक अभिज्ञता है। मनुष्य के अहंकार का थोथा दावा मात्र है। साफ शब्दों में कबूल करना चाहें तो भाषाओं के माध्यम से उपलब्ध मनुष्य का समस्त ज्ञान-विज्ञान नितांत मिथ्या है—क्योंकि उसकी सत्यता का प्रमाण मनुष्य की अपनी भ्रामक अभिज्ञता के अलावा और कहीं से पुष्ट नहीं होता। विज्ञान की जर्जरित तानाशाही ने अपनी इस दीनता को अब स्वीकार कर लिया है। जो इस तथ्य को नहीं जानते वे अब भी विज्ञान के दम्भ से अभिभूत हैं।

निरंतर बदलती हुई धारणाओं, मान्यताओं व स्थापनाओं का 'वैज्ञानिक एवं सामाजिक क्रम' ही मनुष्य के तथाकथित सत्य की भ्रान्ति का पर्याप्त प्रमाण है। यथार्थ के अस्तित्व व स्थिरता की अपरिवर्तनशीलता और उस से संबंधित मानवीय धारणाओं का नित्य परिवर्तन क्या मनुष्य की भ्रान्ति को यथेष्ट रूप से उद्घाटित नहीं करता?

++

काव्य-कला में प्रयुक्त शब्दों के बहाने भ्रामक विकृति के बदले स्वयं सत्य प्रतिष्ठापित होता है। यहां शब्द—सत्य के तथाकथित प्रतीक न हो कर स्वयं सत्य को धारण किये हुए होते हैं। इसलिए

शब्दों के माध्यम से अपना स्वरूप ग्रहण करने वाली मानवीय विधाओं में केवल काव्य-कला के अलावा सत्य की व्यंजना किसी भी अन्य विधा में नहीं होती। शब्दों के सीधे जाल से सत्य को नहीं पकड़ा जा सकता। कविता में प्रयुक्त शब्दों की अप्रत्यक्ष शक्ति ही सत्य को थामने में समर्थ होती है। मानवीय जगत में केवल कलाकार ही सत्यद्रष्टा होता है।

किन्तु भाषा के इस अपर्याप्त भ्रामक माध्यम के सहारे कवि सत्य-द्रष्टा के इस पद को क्योंकर पाये? प्रश्न बड़ा सीधा है। बड़ा जटिल है!

++

समस्त ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियों के बावजूद मानवीय जीवन की यह विडम्बना है कि ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक या विद्वान का बेटा आज भी उतना ही अबोध, निरीह व असहाय पैदा होता है, जितना कि हजारों-लाखों वर्ष पूर्व आदिम काल में हुआ करता था। उपयुक्त पारिवारिक व सामाजिक वातावरण के अनुपात में समय के साथ-साथ वह सारी बातें सीखता है। बैठना, खड़ा होना, चलना, तुतलाना, बोलना, पढ़ना, लिखना, किसी कला में दक्षता हासिल करना आदि यह सब — वह सब! और इन सब का एक-मात्र माध्यम है — यही अपर्याप्त मानवीय भाषाएं। बोलने की प्रवीणता हासिल करने के बाद शुरुआत में इन्हीं मानवीय भाषाओं के अक्षरबोध की शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। और तत्पश्चात् अपनी अपनी मर्यादित शिक्षा के दायरे में भाषा के माध्यम से प्रचलित ज्ञान-विज्ञान को शनैः शनैः उपलब्ध कराया जाता है। प्रचलित कलात्मक विधाओं से परिचित कराया जाता है। जो सामाजिक रूप से जाना गया है—वह व्यक्ति को सौंपा जाता है। जो सामाजिक ज्ञान की मर्यादा है — वह वैयक्तिक ज्ञान की मर्यादा बन जाती है — अपने-अपने शैक्षणिक व अपनी-अपनी योग्यता के सानुपातिक दायरे में। इस सब सामान्यता के बीच अपवाद स्वरूप कुछ अपूर्व प्रतिभाएं भी उद्भूत पड़ती है।

शैक्षणिक व निजी योग्यता के विभिन्न दायरों के फलस्वरूप व्यक्ति

की अभिज्ञताएं, धारणाएं, स्थापनाएं, मान्यताए तथा भावनाएं भी विभिन्न हुआ करती हैं। एक ही सामाजिक सत्य को हजारो लाखों मनुष्य हजारों लाखों रूपो में जानते हैं। और अपनी उसी जानकारी को वे अंतिम समझने लगते हैं। अपनी-अपनी स्थापनाओं को ही एक-मात्र सत्य समझते हैं। पर सच बात तो केवल यही है कि मनुष्य की एक भी धारणा या स्थापना न अंतिम है और न एक-मात्र सत्य है। पर अपने-अपने सामाजिक दायरे में जकड़े व्यक्ति की विवशता है कि वह अपनी मान्यताओं को अंतिम व एक-मात्र सत्य समझ लेता है। चाहे वह व्यक्ति किसी भी पथ या वाद को चलाने वाला हो—चाहे वह अनुगामी हो! प्रवर्तक व अनुगामी दोनों ही इसी मजबूरी के शिकार होते हैं।

पर इस सचाई तक पहुंचने में भाषा के माध्यम से चरितार्थ स्थापनाओं की बदलती बैसाखियां चलते रहने के लिए आवश्यक हैं।

स्थापनाओं की बैसाखी को बैसाखी समझ कर उसे ग्रहण करने के बाद निरंतर छोड़ते रहने में ही मनुष्य की मुक्ति है।

स्थापनाओं को ग्रहण करने के अलावा, किसी भी व्यक्ति का कहीं भी निस्तार नहीं है, पर साथ ही साथ उनका परित्याग करने के महत्त्व को भी समझ लेना चाहिए।

कोई भी कवि या कलाकार पूर्व नियोजित सामाजिक दायरे में कैद होने के कारण, प्रचलित सामाजिक मान्यताओं से ऊपर नहीं उठ सकता, मुक्त नहीं हो सकता। पर प्रतिबद्धताओं की इन अनिवार्य बैसाखियों पर लंगड़ाते-लंगड़ाते चल कर ही कवि या कलाकार को उन्हें छोड़ते रहना चाहिए, तभी वह अपने पांवों पर सहज गति से दौड़ सकेगा। प्रतिबद्धताओं की बैसाखियों से ऊपर उठ सकेगा। उन्मुक्त कला की सृष्टि कर सकेगा।

अपने आत्म-मुक्त स्वरूप को प्राप्त करने के लिए सजग कवि को प्रतिबद्धताओं की बैसाखियों का सहारा लेना भी जरूरी है, पर उस से भी ज्यादा जरूरी है उन्हें एक-एक करके छोड़ते रहना।

कोई भी कलाकार चाहे कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो प्रतिबद्धता

का बंधन उसे एक ऊंचाई से ऊपर उड़ने में सदैव बाधा उपस्थित करता है। उसे नीचे की ओर खींचता है। इसलिए किसी कलाकार को यदि प्रतिबद्ध होना ही है तो अंत में केवल अपने प्रति, अपनी कला के प्रति, अपनी विशुद्ध निष्ठा के प्रति।

कला की अप्रतिबद्ध सृष्टि ही कलाकार की सर्वोच्च जिम्मेवारी है। उसका सर्वोच्च श्रेय है।

कवि या कलाकार के सामाजिक उत्तरदायित्व के नारे का शोर-गुल अब काफी क्षीण पड़ता जा रहा है। उसका केवल इतना ही महत्त्व है कि शुरुआत की स्थिति में प्रचलित धारणाओं का वैकल्पिक समर्थन उसके अस्तित्व की लाचारी है। उसे किसी न किसी मान्यता से चिपट कर ही अपनी मुक्ति पानी है।

++

कला की स्वयं अपनी सृष्टि ही उसकी श्रेष्ठतम सामाजिक उपादेयता है। किसी भी सामाजिक उपयोगिता का माध्यम बनना उसके लिए कतई शोभा की बात नहीं। और यों कला की सामाजिक उपादेयता कोई हो भी नहीं सकती। लिखने के पैन से वक्त-जरूरत पाजामे का नाड़ा भी डाला जा सकता है पर लिखने की तुलना में पैन की यह कितनी क्या उपादेयता है!

जीव की प्रारंभिक उत्पत्ति व उसकी रक्षा के लिए झिल्ली के ऊपर कठोर आवरण का संरक्षण जरूरी है, पर एक समय के इसी जरूरी सांचे को तोड़ कर बाहर निकलने में ही पंछी की मुक्ति है। किसी भी स्थापना की प्रतिबद्धता एक कवि, साहित्यकार या कलाकार के जीवन में केवल इतनी ही उपादेयता रखती है। इस से आगे की उपादेयता को अंगीकार करने से पंछी की मुक्त उड़ान में बाधा ही उपस्थित होगी।

पक्षी की तरह उपलब्ध कठोर संरक्षण के रूप में भाषा व प्रचलित मान्यताओं के भ्रामक दायरे को तोड़ कर ही कवि सत्य की खोज के लिए निस्सीम उन्मुक्त गगन में विचरण कर सकता है।

++

'कितने समय तक मैं अपनी कलम को तलवार के समान ताकतवर समझता रहा, पर अब महसूस करता हूं कि मैं कितना असमर्थ हूं।' जाँ पॉल सार्त्र की तरह एक दिन हर कलाकार को यह सचाई महसूस करनी ही चाहिए।

++

यदि किसी बीज को वापिस अनेक नये बीजों के रूप में फलना है तो अपने परंपरागत स्वरूप का मोह छोड़ कर मिट्टी मे गड़ना होगा, नष्ट होना होगा — तभी — केवल तभी वह नय बीजो को उत्पन्न कर सकने में समर्थ होगा। इसी प्रकार यदि कवि को नये रूप में फलना है, अपनी कला का प्रस्फुटन करना है तो प्राप्त स्वरूप, संस्कार, मान्यता, विचार, भावना व भाषा तक को नष्ट करना पड़ेगा।

एक बार भाषा के सांचे मे ढलने के बाद कोई भी सत्य— सत्य नहीं रहता वह 'झूठ' बन जाता है। मानवीय भाषा की यही एक-मात्र विडम्बना है कि किसी भी सत्य को अपने में ढालने के बाद उसे मिथ्या बना देती है, व्यर्थ बना देती है। कोई भी वाद, धर्म या दर्शन भाषा के रूप में अपना अस्तित्व ग्रहण करने के बाद सर्वथा अपनी शक्ति खो देता है। पंगु बन जाता है। सत्यद्रष्टा कवि के लिए सचाई की इस मर्यादा को समझना भी आवश्यक है। और इसके साथ-साथ भाषा व प्रचलित कलात्मक विधाओं के परे सत्य, सौंदर्य व आनन्द को समझना भी जरूरी है।

++

यथार्थ का भ्रम बहुत अरसे तक वैज्ञानिकों व बुद्धिवादियो को छलता रहा है, अब कवि को सत्यद्रष्टा बनने के लिए स्वप्नो की वास्तविकता और मृग-तृष्णा की अमिट ललक के सत्य को समझना होगा। बुद्धिवादियो की गलीज बौद्धिक शक्ति का इस से बड़ा और क्या प्रमाण चाहिए कि जर्मनी के नाज़ीवाद व फासिज्म को उन्हीं की बुद्धि से ही जन्म मिला था। मानवीय जगत को विध्वंस से बचाने के लिए मनुष्य को राजनेता, वैज्ञानिक व बुद्धिवादियों की अपेक्षा अब सत्यद्रष्टा कवि का मुखापेक्षी होना होगा। वह कहां तक इस उत्तर-

दायित्व को निभा पायेगा — यह भविष्य के अंधियारे में छिपा है। और यह तभी संभव होगा जब कवि अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को भुला कर केवल अपने में और अपनी कलाकृति में ही खोया रहेगा — उसे न अपने श्रोताओं की, न अपने दर्शकों की और न अपने पाठकों की रंचमात्र भी अपेक्षा होगी। कलाकृति की सफलता तब किसी की मुहताज नहीं होगी — न सामाजिक प्रतिष्ठा की, न प्रसिद्धि की, न रसिकों द्वारा अर्जित प्रशंसा की और न आलोचकों की।

आलोचना कविता के मर्म को स्पष्ट न करके उसे दूषित ही करती है।

↔

कविता का सृष्टा तो अकेला कवि ही होता है, पर उसे पढ़ने वाले कई पाठक होते हैं और वे मानसिक स्तर, समझ, भावना, सौंदर्यानुभूति व मर्मज्ञता की विभिन्नता के फलस्वरूप अपनी विभिन्न मानसिक गठन के अनुसार सृजित एक ही कला कृति को नये-नये रूप में ग्रहण करते हैं और उस से नया ही आनन्द प्राप्त करते हैं।

कोई भी कलाकृति अपनी सृजन प्रक्रिया में आनन्द-रहित होती है। कृति की सपूर्णता के बाद आत्म-सम्मोहित कवि अभिभूत भले ही हो जाय, पर पाठक के आनन्द से उसका आनन्द कतई मेल नहीं खाता। पाठक का अपना ही निजी आनन्द होता है। काव्य की आलोचना पाठक के आनन्द को विखंडित कर देती है, उसे भुठला देती है। इसीलिए प्रस्तुत काव्य-पुस्तक की आलोचना के अतिरिक्त मैंने ये कुछ फुटकर बातें कही हैं। और भाषा की लिखावट में अपना स्वरूप प्रतिष्ठापित करने के बाद वे अपनी पवित्रता व अपनी सत्यता को सर्वथा खो चुकी हैं। इस तथ्य की चेतना के बावजूद भी मैं लिखने-पढ़ने की भ्रांति से कभी मुक्त नहीं हो सकूंगा, मनुष्य जाति के इस अभिशाप से कोई भी व्यक्ति अछूता नहीं रह सकता — यही सब से बड़ी हास्यास्पद विडम्बना है!

विजयदान देथा

शब्दों का घूंघट

वचन बद्ध

अब पुनः लौटता हूं
ओ मेरे निर्बन्ध सबसे अलग
भोगे हुए क्षण
तुम्हें यहीं छोड़ता हूं ।

जाता हूं यह सोचकर
तुम्हारे पास पुनः लौट आऊंगा ,
मगर कहीं अर्थहीन प्रयास के
प्रवाह में बहने से बच पाऊंगा ।

कभी कभी इस बीच
याद मुझे आते रहना ,
वचन जो दिया है तुम्हें
उसे बताते रहना ,
धीरे से मेरे मन में
गुनगुनाते रहना ,
गीतों के साज को
हलके से बजाते रहना ।

तर्क भावुकता

तर्क
ठोस तर्क सिर्फ ;
मेरी रग रग में
जमा है ठंडा कठोर बर्फ।

तरल भावुकता
उसमें बहे कैसे ?
भावुकता और तर्क
साथ साथ रहें कैसे ?

हां अलबत्ता कहीं कहीं चट्टानों के मध्य
भावुकता चुपचाप बही है ;
जो कभी गीत में
मींड़-सी ध्वनित होती है
भावुकता वही है।

घर की देहरी पर
जिसे सजाया जिसे रचाया
पर छोड़ गया घर सूना
उस घर की जैसे अल्पना ;
जिसका कुछ संदर्भ नहीं आधार नहीं
कोरी वैसी कल्पना ।

जो महाकाव्य तो क्या
गीत नहीं मुक्तक तक नहीं
नहीं शब्द भी नहीं
बस एक अक्षर है ;
इससे कहीं अधिक हुआ तो बस
एक हस्ताक्षर है ।

गीत का औचित्य

यह गलत है
कि जो कुछ घटता है
वह सभी कुछ कहना चाहिए,
यह तो कुछ ऐसी बात हुई कि
सही गलत जो कुछ भी होता है
उसे चुपचाप सहना चाहिए,
जिधर भी धार ले जाय
उधर ही बहना चाहिए।

आखिर कविता कोई
वैयक्तिक दैनन्दिनी तो नहीं,
महज घटनाओं की वंदनी तो नहीं!

जो घटे
और घटकर मन में छोड़ जाय छाप,
मन की धड़कनों में
जिसकी बजे पद चाप,
जो कहना तो चाहा जाय
पर सहज ही कहा नहीं जाय,
और जिसकी कशिश कुछ ऐसी हो
कि जिसे कहे बिना
रहा भी न जाय।

अभिव्यक्ति की खोज

बहुत दिनों से
मैं ढूंढ़ रहा
वह राग वह स्वर
जो मुझे अभिव्यक्ति देगा,
मेरी टूटती आस्थाओं को
जरूरी मुक्ति देगा,
मेरे डूबते साहस को
जरूरी शक्ति देगा,

अभी तक सीधी सरल राह थी
गीतों ने मुझे उन पर
सहज ही चलाया था।
अब रास्ता रोकने कई मोड़ आये हैं,
एक से दिखते हैं
पर जो एक था
उसे कहीं पीछे छोड़ आये हैं,
कभी कभी तो लगता है
जो आज तक था
उसे सम्पूर्णतः तोड़ आये हैं।

मेरे तो राह के साथी
राह के सम्बल
गीत ही रहे हैं,
इन्हीं के सहारे
सत्य
आज तक गहे हैं।

इसलिए अब जो सत्य है
इन्हें मुखर करे–

ऐसे स्वर खोजने पड़ेंगे ;
नहीं तो स्थिरता से अभिशप्त होकर
मेरे गीत निश्चय ही सड़ेंगे ।

क्यों चुप हैं मेरे गीत

मेरे मन से
कभी उमड़ते थे निर्झर
मीठे गीतों के,
कभी रोष की आंधियों से प्रेरित
प्रचंड गीतों का महानाद उठता था,
तो कभी वेदना से रुद्ध
घुटे घुटे
मन्द करुण गीत
बंसी से बज उठते थे,
पर आज
मौन हैं मेरे गीत।

ऐसा तो नहीं है कि कोई भी हृदय
अब प्रेम से नहीं जुड़ते,
अभी भी बहती तो है ही
अजस्र प्रेम की अशेष मंदाकिनी
दोनों ही किनारों को सींचती भिगोती
जीवन को संजोती,
फिर भी
क्यों हैं मेरे गीत
चुप और उदास?

ऐसा तो नहीं है
कि विनाशों के उनचास पवन
अब बहा नहीं करते,
हैं अब भी बहुत
जो सहते ही सदा रहते,
कहने को बहुत विकल

पर जो चुप हैं
कहा नहीं करते,
पर भी हर मन में घुमड़ता है
आंधियों का प्रचण्ड वेग
कभी जो सहेजा था;
इन्हीं के मौन स्वर को
स्वर दिया था मैंने।
इन्हीं के रोष को
मैंने दिशा दिशा में भेजा था,
इन्हीं आंधियों ने मन में आ
मन की बंसी को बजाया था,
मेरे मन में जो नपुंसक रोष था
उस रोष को सोते से जगाया था।

आज मेरे जीवन के बंद कपाटों को
ये आंधियां खटखटाती हैं
झकझोरती हैं,
पर मन क्या सो गया है
या फिर मन का रोष
मर गया है खो गया है?

ऐसा तो नहीं है कि
नयन अब रोते नहीं हैं,
दुखों का उठता है
रौरव शोर
थक गये नयन
पर सोते नहीं हैं।

छलकने को छलकता था
एक ही मन,
मेरे मन में घुमड़ आता था
उमड़ता हुआ सावन,

कौंध उठती थी रह रह
एक तपन एक तड़पन,
अब तो बरसते हैं
अनगिन विकल नयन,
फिर भी क्यों
भीगता नही मेरे मन का आंगन।

मैं एक भीड़ से घिर गया हूं
जिस भीड़ से मेरा मन नही मिलता,
इस भीड़ के बेमतलब स्वर
सुनने ही नहीं देते
स्नेह की मीठी बंशी
या रोष का घनघोर रौरव।

इस भीड़ के अनगिन चरणो ने
ढक लिया है
मेरे मन के आंगन को,
तभी तो सावन का अनवरत
गिरता हुआ जल
मन के आंगन तक पहुच ही नही पाता।

डरता हूं
कहीं इस भीड़ मे घुलकर
स्वरों से अनजाना नही हो जाऊ,
भीड़ के शोर को सत्य समझ
भीड़ के शोर मे नही खो जाऊ।

मेरे अंतर में कहीं
गीतों का स्रोत है
जैसे भूमिगत जल,
इसके होने का अहसास
न कह सकने की विवशता
मुझे व्यग्र करती है
एक टीस सी मन में समग्र भरती है।

हाय प्रेरणा कब
मन के पोरों में
अपने हाथ डाल
इस स्रोत को उभारेगी
मुझे घुमड़ती व्यथा से उबारेगी !
कब गीतों की जाह्नवी बहा
मैं सबके मन सरसाऊंगा,
ये जो इतने मुरझाये मन हैं
कब उन्हें हरसा पाऊंगा !

तलब

गतों की तलब
बहुत ही अजब
यों तो महीनों तक नहीं आती
पर जब आती है
जब तलक गा नहीं पाती
तब तलक बहुत ही सताती है।

गीत सुनाता हूं

लो मैं गीत सुनाता हूं
मधु के घट छलकाता हूं
सबको मीत बनाता हूं ।

गीत सुनाते युग बीते
मेरे कलश नहीं रीते
जाने कितने दिन जीते
सबकी व्यथा भुलाता हूं ।

नयन किसी से सहज मिले
मन में जैसे फूल खिले
सजे फूल के सिलसिले
ये सौरभ सरसाता हूं ।

ग्राज किसी का मन रोया
जैसे चमन-चमन रोया
हंसता हुग्रा पवन रोया
इनका मन बहलाता हूं ।

जिसकी प्यार सहेली है
जैसे नार नवेली है
जीवन एक पहेली है
मैं इसको सुलझाता हूं ।

जुल्म जोर पर ग्राता है
ग्रांखें झूठ दिखाता है
न्याय कभी डर जाता है
तब संघर्ष सजाता हूं !

सार्थक गीत

ऐसे गीत नहीं गाता मैं
जिनका अर्थ नहीं,
नहीं गीत का एक शब्द भी
मेरा व्यर्थ नहीं।

पुलक हो एक पलक की भी
गीत से शाश्वत कर देता,
लाख कंठों से मुखरित हो
खुशी से मानस भर देता।
मैंने जिस क्षण को जी डाला
मिटा सके उस क्षण को ऐसा काल समर्थ नहीं।

जुल्म की आंधी में खुलकर
गीत के दीप जलाता हूं,
अंधेरा शेष नहीं रह जाय
रात के चीर जलाता हूं।
गीत की दीप शिखाओं ने
तनिक भी तम का छोड़ा शेष विवर्त नहीं।

हृदय के सूने मरुथल में
गीत की गंगा बह आई,
पुनः आशाओं से प्लावित
मुरझती मन की अमराई!
मैंने जिस मन को छू डाला
रस की धारा नहीं बहे सम्भव अनर्थ नहीं।

प्रवाह से दूर

गीतों को खोजने
दूर यहां आया हूं।

वो जहां मैं रहता हूं
दुख-सुख सहता हूं
वो तो एक प्रवाह है
जहां लगातार बहता हूं।

वहां समय कहां मिलता है
सोचने का समझने का
गाने का या बजने का
रूठने का या सजने का।

उस प्रवाह में जब आया था
तो सोच नहीं पाया था
इसका प्रबल वेग प्रलयकारी है
जिसकी बहा ले जाने की शक्ति बड़ी भारी है।
वहां मैं करता नहीं कराया जाता हूं
वहां मैं जीता नहीं जिलाया जाता हूं।
भय है किनारों का बोध ही शेष नहीं रहे
मैं निःसत्व हो जाऊं प्रवाह जो है वही रहे।
वहां सोच नहीं पाता हूं
इसलिए गीत नहीं गाता हूं।

सोचों से दूर गीत नहीं होते हैं
अपनी हस्ती से अलग गीत कहीं होते हैं !
मन में कुछ सोच हो तो उसे ढूंढ लूं गालूं
अपनी कोई बात हो तो सुस्तालूं पालूं
प्रवाह के वेग से बच अपने को सम्भालूं

मेरा कुछ अपना हो वो डूब नहीं जाय उसको बचालूं,
इसलिए वहां से अपने को दूर यहां लाया हूं।

गीतों को खोजने
दूर यहां आया हूं।

अन्यथा

समय के लगाम बांध
सही ओर मोड़ दे,
विकास को करें जड़
उन रूढ़ियों को तोड़ दे।

दिग्भ्रान्त होते आज को
उभरते भविष्य से जोड़ दे,
गा सके तो गीत ऐसे गा
अन्यथा गीत गाना छोड़ दे।

गीत खो गये

मुझे गीत गाये हुए
बहुत दिन हो गये,
बहुत पुरानी बात है
जब पल-छिन रो गये,
याद नहीं पड़ता
व्यर्थताओं, व्यस्तताओं में
कब रात गये गीत सो गये !

दायरे

बहुत छोटे हैं दायरे
मेरे चिंतन के
संघर्षों के,
बहुत सीमित हैं मुहावरे
मेरे दर्दों के,
इसलिए
क्या अर्थ रखते हैं
पैमाने
दिनों के महीनों के वर्षों के।

उन्हीं सीमाओं में बंधी
बहती गीतों की धार,
एक ही बूंद से
बधा गीत का पारावार।

विडम्बना

पड़ोस के कमरे में
किसी ने दस्तक दी ,
मैं चौंका
समझा मेरा कोई
आया है ,
द्वार खोला
वह बोला
मैं आपके यहां नहीं
पड़ौस में आया हूं ,
गीत मेरे
मुझ से ही
ऐसा क्रूर
उपहास क्यों करते हैं ?

अपराधी

मेरा कसूर क्या है
क्यों महसूसता मैं अपने आप को
अपराधी ?
क्या इसीलिए
कि मैं शब्दों को मोड़ता नहीं
छिपाता नहीं,
उनको अपने से स्वतन्त्र
अनोखे परिधान
पहिनाता नहीं।
वैसे यह कोई कठिन काम नहीं ;
मौन शब्दों की बिसात ही क्या है ?
उनसे जो भी चाहा जाय
देंगे वक्तव्य
अकिंचन को भी कर देंगे भस्म ।

मेरी एक कुंठा
बताई जा सकती है क्रांति,
कुहरे-सी फैलाई जा सकती है
तटहीन भ्रांति ।

लेकिन नही
मुझ से यह नहीं होगा
या तो होगा ही नहीं
यदि होगा
तो वही जो सही होगा,
क्योंकि शब्दों ने मुझे नहीं
मैंने शब्दों को भोगा ।

शब्द और मैं

मेरा यह अपराध है
कि मैं शब्दों को अपने से अलग नहीं जीता,
उनको गिलास में भरकर
पानी की तरह नहीं पीता,
अपनी कुंठाओं को क्रांति के परिधान
मैंने नहीं पहिनाये,
मोर्चे पर अपने आप को झोंके बिना
युद्ध के शंखनाद नहीं बजाये।

बिना खुद जले
आग के दरिया नहीं बहाये,
तूफानों को श्वास में
घोले बिना
तूफान के वेग नहीं बरपाये।

खुद तटस्थ रहकर
औरों की तटस्थता को
मैंने नहीं नकारा,
अपराधी हूं
अभिशप्त हूं
मैं इस तरह
शब्दों की शतरंज
बुरी तरह हारा!

मेरे छन्द

मेरे छन्द
शब्द की माटी के हैं कलश,
कि जिन में मिट्टी के बेटों के आवेग-भाव का जल
करता छलछल।

अभी नये हैं
इन में मिट्टी की सोंधी-सोंधी गंध अभी आती है,
पनिहारिन कविता इन्हें शीश पर धर
फलती धरती के गीत अभी गाती है।

इन कलशों का जल
जो पनिहारिन भर कर लाई है,
उस पानी का बल
प्यासी धरती को मिल जाये
धरती का अन्तर्मन खिल जाये,
खेतों के बनें दुकूल
धरती की लाज बचाने
मेड़ों के चीर सहज खिल जायें।

स्फुरण

जितनी ही बार
मन को सहज स्थिति में पाता है,
तो मन में खिलने वाला
गीतों का फूल मुस्कराता है।

सामंजस्य

जब यह धरती हरी होती है
उसकी गोद सूनी नहीं भरी होती है,
तो लगता है
मेरे गीत
जो सूखे थे हरे हो गये
जो कभी सूने थे
आज घने हो गये

इस धरती में और मेरे गीत में
कुछ ऐसा नाता है,
एक में उभरता है बीज
दूसरे में उग आता है !

गीत की नियति

मैंने एक दिन गीत का बीज मन में बोया
ग्रौर मन को दूर कहीं
वीराने में छोड़ ग्राया,
सोचा
यहां मैं भीड़ से घिरा रहता हूं
भयानक धक्कम-पेल सुबह शाम सहता हूं,
इस में गीत नहीं पनपेंगे
ग्रौर कुछ भी पनपे भले,
ये गीत बड़े नाजुक हैं
मुरभायेंगे भीड़ के पैरों तले,
इन्हें भीड़ से दूर
साफ खुली हवा मिले,
सुहानी धूप इन्हें नहलाये
मद भरी चांदनी सहलाये
तो हो सकता है
गीत का मीठा सुहाना फूल खिले;
यह सोच कर
उस दिन
मन में गीत का बीज बोकर
उसे वीराने में छोड़ ग्राया था,
बिना मन के
मैं एक प्रवाह में बहता रहा,
बिना किसी एहसास के
काम की मार को सहता रहा,
इसी उम्मीद में कि विपाक्त जिन्दगी की
जहरीली छाया से बचकर
निश्चय ही गीत का फूल खिलेगा,
ग्रौर जब कभी

मन को लौटाने जाऊंगा
वो अनायास
खिलता हुआ मुस्कराता हुआ मिलेगा ;
और एक दिन जब मैं
बड़े उत्साह से
गीत का फूल लेने लौटा ,
तो पाया
फूल तो फूल
जिन्दगी के स्पर्श से अनछुआ
बीज भी धूल हुआ ,
जिन्दगी से अलग रहकर
मन भी सूखा हुआ बबूल हुआ ।

मेरे गीत में युग होना चाहिए
जो आज तक नहीं हुआ,
मुझे उन अनछुए सूत्रों को छूना चाहिए
जिन्हें आज तक किसी ने नहीं छुआ।

गीतों में वो कैसे हो
जिसे मैं न मानू
गीत उसे क्यों स्वीकारेंगे
जब तलक मैं उस अनजाने को न जानूं।

जो मेरे मन में है
वो बीज
फूटता है लेता है अंगड़ाई
गीत में उभरता है
गूंजती जैसे शहनाई।

यह अंकुर फूटे तो
फिर उसे सजाने की बात है,
मन में एक धुन उभरे तो
फिर साज बजाने की बात है।

यह बीज जब मन में
समायेगा नहीं पड़ेगा नहीं,
जब तक हल का फल
मन में गड़ेगा नहीं,
यह गीत कभी बढ़ेगा नहीं।

बीज अगर आकाश से
आकर

यों ही सतह पर पड़ेगा ,
तो यह पनपेगा नहीं
केवल सड़ेगा ।

सिद्धि

जो
सम्पूर्णतः मेरा हो
या सम्पूर्णतः औरों का हो
वह गीत का विषय नहीं
विन्यास नहीं,
जो औरों का होकर भी मेरा हो
गीत की लय वही सुहास वही।

समर्थ गीत

गीत मेरे
सबकी धड़कनों को सुन
उनकी बात को समझ,
उनकी धमनियों में बह
उनकी धड़कनों में बज।

अपने आप बैठे गुनगुनाना व्यर्थ
अपने आपको अपनी बात का क्या अर्थ?
जो सभी की धड़कनों में जा बसे
सार्थक वही है बात
वही गीत है समर्थ।

गीत गा तो सकता हूं

कुध बुध हुमा विश्वास
कि गीत गा तो सकता हूं,
धुनें कहीं बस छिपी-सी पड़ी हैं
प्राणवान हैं अभी नहीं मरी हैं।

मैं अगर उन में पैठूं
बूढ़ने थोड़ी देर बैठूं
उन्हें ओंठ पर ला तो सकता हूं,
प्रेरणा के स्रोत अभी सूखे नहीं हैं
कल्पना के कल्पतरु अभी रूखे नहीं हैं
उन्हें अगर खोलूं
धुन में अगर घोलूं
तो सुना तो सकता हूं।

गीत में वह बात क्यों नहीं आ पाती
जो मन में कसमसाती है,
बात यह है
कि बात अच्छी तरह से
वही कही जाती है
जो समझने के अलावा
मन में गही जाती है।

प्राप्ति

यह आसपास जो सूनापन है
इसने ढूंढ़कर
मुझे लौटा दिया है,
अस्तित्व के विनाशकारी हाथ से
व्यक्तित्व को उबार लिया है।

मेरे सोचने के संदर्भ जो धूमिल पड़ गये थे
गीतों के स्रोत जो अनबहे होने से सड़ गये थे,
उन संदर्भों को मैंने फिर जाना है
भूले हुए गीतों को फिर से पहचाना है।

यह सच है उन गीतों में पहले की बात अब नहीं है
मैंने अपनी या औरों की पीर कब सही है?
कभी जो सही उस पीर को ढूंढ़कर निकाला है
उसी से उजागर यह गीत का उजाला है,
दूर कहीं दूर बुझते हुए दीप का प्रकाश
पा सका है गीत में हलका सा आभास।

कि मुझको लिखना है एक गीत

मेरे मित्र मुझे कहते हैं
तेरे गीत कहां रहते हैं ?
इतना समय हो गया
सुनाया नहीं एक भी नया।
कि उनको बात बतानी है
कविता मेरी नही कहानी है,
मन मे मेरे सोये कई प्रसग
कलम को नही लगा है जंग।
इनको कैसे बात कहूं
मौन यों क्योंकर इतना हूं,
नहीं हो जाए नाराज
ये मेरे साथी मेरे मीत।
इसी से लिखना है एक गीत।

कि पहले किसकी बात लिखू
कि इनसे किसकी बात कहू ?
यहां पर जितने भी हैं लोग
लगा है उन सबको ही रोग।
ये हैं सभी लोग हैरान
सभी में छुपा एक शैतान,
लाख बचने की इनकी चाह
मिलती नहीं एक पर राह।
इनको कथा सुनाऊंगा
मनों की व्यथा जगाऊंगा,
इन्हीं के घर का एक प्रसंग
कि जिसकी कथा करूं वर्णित

यहां कल आई थी बारात
मदन - दूल्हे को लेकर साथ,

शचि ने खूब किया शृंगार
द्वार पर झूमे वन्दनवार।
रूप का सागर लहराया
देह में यौवन सरसाया,
कुंवारा यौवन फूल उठा
अथाह सुख मन में झूम उठा।
सच में इसी दिवस के लिये
कि जिसके सोलह वर्ष जिये,
मन में उमड़ी चाह अथाह
सुख की चरम यही परिणति।

बांह बनने को आतुर हार
वक्ष कलशों में उमड़ा प्यार,
होंठ ये मधु के सागर हैं
नयन लज्जा की गागर हैं।
गाल पर कमल फूल आये
चाल में रूप फिसल जाये,
रूप के छलके लाख कलश
उठा है यौवन अलस अलस।
लो ये सधे नयन के बाण
इनसे नहीं किसी का त्राण,
रूप से दुनिया को जीते
समर्पण लेकिन जिसकी जीत।

हां यह दुलहन सीता है
राम जिसका मनचीता है,
रास की रानी राधा है
कि जिसका प्रेम अगाधा है।
महाकवि की यह शाकुंतल
देह घर आई या मूमल !

नहीं क्या ढोले की मरवण
प्रेम भर जिसका जीवन घन ।
या फिर स्वयं प्रीत साकार
मीत का ढूंढ रही ग्राकार ।
देह की वीणा पर गुंजित
रूप का ग्रजर-ग्रमर संगीत ।

द्वार पर शहनाई बोली
गीत की सरिता-सी डोली,
बहुत से मधुर कण्ठ बोले
हृदय के राज कई खोले ।
कुमकुमी चरण नाचने लगे
पायलों के मधु सुर-से पगे,
खुशी से चहक उठा हर मन
मधुर स्वर से महका ग्रांगन ।
किसी ने एक ठिठोली की
फूल की बिखरी लड़ी लड़ी,
सुखों का सावन ग्राया है
बरसने वाली है झड़ प्रीत ।

द्वार पर क्यों है हाहाकार
राम को सीया नहीं स्वीकार ।
सभी हैं कहते यही पुकार
'राम को सीया नहीं स्वीकार ।
नहीं सोने की लंका है
सिया का रूप कलंका है'
रूप तो सीता का नश्वर
करे क्या राम रूप लेकर ?
कैकयी भले नहीं मांगे
दशरथ वचन नहीं त्यागे,

'मोल के बिना नहीं कुछ भी
प्रीत की मुझे रोष परतीत !'

सिया को राघव पाना हो
जनक को मोल चुकाने दो।
सिया की सेज सजाने को
आज मिथिला बिक जाने दो।
राम को राज्य चाहिए ही
सिया को बन में जाने दो,
रूप-यौवन से क्या होगा
इसे वैधव्य सजाने दो।
जिन्दगी होती है नीलाम
चुकाओ दाम मोल लो राम,
राम ने रावण से सीखी
ज्ञान की हार स्वर्ण की जीत।

राम को सिया नहीं प्यारी
स्वर्ण का मृग ही प्यारा है,
कृष्ण ने कंचन की खातिर
सहज राधा को हारा है।
मरवणी बिलख रही ढोला
छोड़ पूंगल को जाता है,
प्रीत की रीत बनी ऐसी
जहां कंचन से नाता है।
स्वर्ण की नई निशानी है
शकुंतल अन-पहचानी है,
प्रेम की मर्यादा बदली
प्रीत की पलट गई है रीत।

तुम्हारे मन में ही यह राम
तुम्हारे घर में यह सीता,

प्रेम के गीत सुनाने का
कि लगता जैसे युग बीता ।
प्रेम का मोल कहां है शेष ?
रूप के बदले सारे वेष
मानवी सारे ही रिश्ते
मर्म के घावों से रिसते ।
रूप का गीत चाहते थे
सुनाऊं लेकिन वह कैसे ?
इसी से छंद रहे थे मौन
मौन था कविता का संगीत ।

गीत पुराने गा सकता हूं

किन्तु तुम्हारी इच्छा हो तो
गीत पुराने गा सकता हूं ,
अपने उर को उद्वेलित कर मैं तुमको बहला सकता हूं ।

उन्मादों को बांध स्वरों में
आवेगों को लय में भरकर ,
वैसे मैंने गीत बहुत से
रच डाले हैं सुन्दर सुन्दर ,
[एक दूसरे से बढ़ बढ़कर]
अपने इस संयत स्वर द्वारा उनकी होड़ बता सकता हूं ।

उन गीतों की बात न छेड़ो
उन में था सकुचाया बचपन ।
बात बात मे रो देता था
घड़ी घड़ी में होता उन्मन ,
[पलक पलक में खो जाता मन]
यौवन की सीपी में भरकर अब सागर लहरा सकता हूं ।

इन गीतों को गा गा करके
मैंने तुमको भुला दिया था ,
जब तुम छोड़ गई तब इनको
मीत हृदय का बना लिया था ।
[धीरे से गुन गुना लिया था]
तुमको खोकर प्यार तुम्हारा इन गीतों में पा सकता हूं ।

अब आकर समझा हूं क्यों है
रोष तुम्हारा इन गीतों पर ,
भुला सका मैं याद तुम्हारी
इन गीतों को ही गा गा कर ,
[अपना मन बिलमा बिलमाकर]
मुश्किल से जो भुला सका वह पीड़ा पुनः जगा सकता हूं ।

संदर्भ विहीन

कहने को नहीं कुछ भी
क्या सुनाऊं गीत ?

क्षण भोगते मुझको
नहीं मैं भोगता हूं क्षण ,
जिसे कह सकूं जीना
वह कहां जीवन ?
अस्तित्व से सत्रस्त यह
जीवन बहुत भयभीत ।

कहां है याद उनकी शेष
जो पल कभी बीते ,
जीवन तो निपट सूना
रस घट सभी रीते।
व्यस्तता की यह अनर्थक भीड़
अपनी कहां परतीत ?

सो गये संदर्भ
अब हूं मैं लुटा-सा क्षण ,
जिसका कुछ नहीं हो अर्थ
ऐसी एक मैं उलझन ,
एक ऐसा स्नेह मैं
कोई न जिसका मीत ।

मेरा प्यार

तुम से सुन्दर तो कविता का कोई विषय नहीं

मुझ से सच है गीत
तुम्हारा गाया नहीं गया,
बात नहीं की किन्तु
प्रीत को मैंने सहज जिया;
शोर मचाकर कह दे ऐसा मेरा प्रणय नहीं।

सहज प्यार से मैंने
पाया प्यार तुम्हारा है,
अपरिमेय यह प्यार
न इसका कूल किनारा है;
सहज प्यार से गहरा विस्तृत कोई निलय नहीं।

इसी प्यार के बूते
मैंने सबको प्यार किया,
इसी प्यार से सजकर
सुन्दर यह संसार लिया;
मिटा सके यह प्यार कि ऐसा कोई प्रलय नहीं।

प्रश्न–उत्तर

प्रश्न तुम्हारा कौन मेरा मीत
उत्तर मेरा कौन नहीं है ?

मैंने सबकी कथा सुनी है
भरसक सबकी व्यथा गुनी है
कहने को तो हैं ये मेरे गीत
सच में सब की बात कही है ।

कभी किसी को नहीं बिसारा
चाहे कर ही गया किनारा,
खूब संजोई हर मन की प्रीत
तब मन में रसधार बही है ।

इतनी प्रीत निभाई कैसे ?
इतनी पीर बसाई कैसे ?
सच तो यह है गया इसी से जीत
मैंने गीत की बांह गही है ।

कहने को तो इन गीतों में मेरे मन की बात है
किन्तु जमाने भर का इन में सोया झंझावात है।

मैंने तुमको प्यार किया है जैसे दुनिया करती है
अपने दिल को हार दिया है जैसे दुनिया करती है,
लगने को तो प्रेम कहानी लगती है केवल मेरी
गुंथी सभी की प्रेम कहानी इन गीतों के साथ है।

मैंने भी संघर्ष किये हैं जुल्म सहे अन्याय सहे
अरमानों के मेले मन में सिसक कर लगे रहे,
किन्तु अकेले मुझ से ही तो जुल्म नहीं लड़ने आया
हर जीवन में कुछ पल आई यह अंधियारी रात है।

कदम अकेले नहीं राह पर चलने वाले हैं मेरे
हर मुकाम पर मेरे साथी बैठे हैं डाले डेरे,
कुछ थक कर सुस्ताते हैं पर चलने को आतुर हैं
मेरे मन में इनके मन में बसी एक ही बात है।

कदम उठाना भर बाकी है और बदलने वाले हैं
जुल्मों से प्रतिकार सजाने पैर मचलने वाले हैं,
कौन रोक सकता है मुझको जीत सुनिश्चित है मेरी
मेरे इस महाप्रयाण में और सैकड़ों साथ हैं।

प्रवासी मन

किसी ने प्रीत जो परसी
तुम्हारी याद लो सरसी,
यह विजन आंगन
यह प्रवासी मन,
नयन में उमड़ा
प्रीत का लघु घन ;
हुए पल के चरण बोझिल
यों हर घड़ी तरसी।

विछोह के क्षण

तुम्हारी याद का संस्पर्श
स्वयं सान्निध्य से गहरा।

तुम्हें पा जो हुआ उद्रेक
न पाकर हो गया व्यतिरेक,
कि लगता कुछ नहीं चलता
ठिठक कर समय तक ठहरा।

अब जब तुम नहीं हो पास
सीलती-सी जा रही है प्यास,
अभावों का विकट संत्रास
उदासी दे रही पहरा।

सर्मपित

कर लो मुझे स्वीकार
मैं तुमको समर्पित हूं,
किंचित नहीं इन्कार
तुम्हें समवेत अर्पित हूं।

तुम्हारे रूप की गरिमा
अहम् के तोड़ती आलम्ब,
प्रीत का यह प्रबल पारावार
मैं जिस मे विसर्जित हूं।

तुम्हारे प्यार के संस्पर्श
परिधियां कौनसी अब शेष ?
इतना प्यार का विस्तार
छू अस्तित्व विस्मृत हूं।

तुम्हारी प्रीत में फलती
सभी की प्रीत चिर सम्यक्
सभी के प्यार का भागी
असीमित और विस्तृत हूं।

निराश मन

समय धरा यह चलती रहती
गगन वायु भी सदा मचलती,
इन दोनों के बीच मवस्थित
मेरी दुनिया रोज बदलती।

इन चरणों की गति में मैंने
धरती के चरणों को बांधा,
चीर गगन की इस छाती को
मैंने सपनों तक को साधा।

एक लिये विश्वास हृदय में
मैंने साधे स्वप्न निलय में,
हद होती पर इंतजार की
मार निराशा का ले कब तक विश्वासों की नाव बहलती।

टूट गई भ्राशाएं दिल की
किया समर्पण साहस ने भी,
भ्राज समय की लहरें मुझको
इधर पटकतीं उधर पटकतीं।

मैं गिनता रहता लहरों को
बीते दिन भ्राते प्रहरों को।
बीच बीच मुस्का उठता हूं
एक समय इन लहरों पर थीं इच्छा की भ्राशाएं चलती।

गत सपनों की पाल साधकर
चलूं समय का उदधि चीरकर,
पार लगा दूं तूफानों को
क्षत-विक्षत नैय्या के बल पर।

ओंठ काट यौवन रह जाता
उमग उमग साहस कह जाता ,
मैं इतरा कर उठ जाता हूं
किन्तु तभी मन के कोने से धीरे से आवाज निकलती ।

किसको किसका रहा सहारा ?
अभी साँझ हुई साथ के पंछी अपनी राह गये सब
अभी शेष है रात अँधेरी जाने इतनी रात कटे कब ?
इसी तरह अनमना हुआ तो कैसे इतनी राह कटेगी ?
औरों का सम्बल ले करके
कौन पा सका कौन किनारा ?

एक रात की बात साथ की एक प्रात का साथ बसेरा
होने को इतना ही क्या कम और हुआ क्या तेरा मेरा,
किन्तु बता क्या दोष शिकायत एक साँझ को टूट चले यदि
एक प्रात का एक रात का
यह छोटा संबंध हमारा ।

सही बात है तुझे सतायेंगी बातें उन प्रिय प्रातों की
एक एक क्षण एक एक पल याद दिलायेंगे रातों की,
किन्तु बता क्या शेष यही कम याद रह गई पास किसी के ?
साथ सभी ने किया यहाँ
पर किसने किसको नहीं बिसारा ?

अद्वैत

आओ
तुम्हें
अपनी बांहों में बांध
तुम्हारे रस को
मेरी रग रग में
रोम रोम में बहा लूं।

सारी सृष्टि से
अलग कर
मैं तुम्हें पालूं
अपने में संभालूं,
मेरा प्यासा मन
इस तरह भरा हो,
सूखता जीवन का चमन
हरा हरा हो।

तुम्हारा प्यार

मुझे तुम से प्यार है
और बहुत प्रखर है,
यद्यपि वह मौन है
नहीं तनिक मुखर है।

मेरी और उपलब्धियां
अवरोधों को तोड़
मुखर होती हैं,
क्योंकि मैंने उन्हें औरों से पाया है
दूसरों के साथ भोगी हैं।

तुम्हारा प्यार एकान्त मेरा है
इसलिए वह नहीं लेश मुखर,
और क्योंकि उसे मैं अकेला भोगता हूं
बांटता नहीं
इसलिए वह
बहुत बहुत प्रखर।

बेटे बेटियां

मेरी ये बेटियां
घर के आंगन में लगे पनपते पेड़ हैं,
इन से घर भरा भरा रहता है,
मेरा यह आंगन सूखता नहीं
हरा हरा रहता है,
एक दिन ये किसी और आंगन
में जायेंगी,
फिर भी इनकी डाल पर पले
पंछी की वाणी
मेरा घर आंगन
सरसायेगी।

मेरे ये बेटे
विकसते हुए पंछी हैं,
जो पंख संवारते हैं
उड़ नहीं सकते इसलिए
बाहर को विवश निहारते हैं,
ज्यों ज्यों ये पंख शक्तिमान होंगे
ये आंगन से कटेंगे,
अलग अलग दिशाओं में बंटेंगे।

अलगाव

तुमने फिर पूछा
कब आ रहे हो ?
मैं तुम से अलग
था ही कब
जो यों बुला रहे हो ।

लेकिन ठीक है
तुम मेरे पास में हो
सांस सांस में हो
श्वास उच्छ्वास में हो ,
पर मैं तुम्हारे पास थोड़े था
तुम्हारे पास तो तुम्हारा रूप था
व्यस्तता थी
यौवन की अलमस्ती थी ,
ये तो मैंने तुम्हें पुकार लिया
इसलिए तुम्हें याद आया
कि मैं भी कुछ हूं
और तुम से दूर हूं ।

परीक्षा

आने की घड़ी
ज्यों ज्यों आ रही है पास,
तुम से दूर हूं
हो गया तीव्र यह आभास।

मन तुम्हारे पास आने को अधिक आकुल
जिन्हें सायास रोका था तृष्णा वह हो गई विह्वल,
कसता जा रहा है
बंधनों का यह मधुर अहसास।

विलय

मैं झूठ नहीं बोलूंगा
मन में पाप नहीं घोलूंगा
मर्यादा का दर्द और नहीं तोलूंगा,
मन में उमड़ते आवेग
घुमड़ते जा रहे सवेग,
कह रहे यह बात
धीरे से मैं तुम्हें लूंगा
तुम्हें लूंगा।

तुम्हारी याद
कंटीले कांटों-सी उग आई है
उस से मैंने नजात नहीं पाई है,
तुम्हें बाहुओं में बांध
तृप्ति लूंगा।

विजोग

तुम नहीं हो पास
सब उदास उदास ,
मन बुझी यह प्यास
फैलता ही जा रहा संत्रास ,
अजब-सा आभास
मुरझता-सा हास ।

भारी हो रहे हैं श्वास
बस एक ही अहसास ,
तुम नहीं हो पास ।

तुम नहीं आये

मैंने तुम्हें भेजा निमंत्रण
पर तुम नहीं आये ।

तुम नहीं आये कि यह सुबह सूनी शाम है सूनी
हृदय में अभावों की कसक अब हो गई दूनी,
बढ़े यों याद के साये ।

तुम नहीं आये प्यासता ही जा रहा है मन
भले ये मेघ बरसें सरसा पर कहाँ सावन,
फिर फिर मेघ घिर आये ।

तुम्हारे रूप के वर्चस्व को स्वीकार करता हूं
तुम्हारे प्यार से मैं जिन्दगी में प्यार भरता हूं,
यह बात कहने में शर्म क्यों आये ?

मैं तुम्हारा हूं पूरी तरह से मानता हूं
मैं तुम्हें समवेत मन से मांगता हूं
सो तुम्हें ये सत्य बतलाए ।

स्थिति बोध

योजनों दूर से
आ रहा है यह तुम्हारा स्वर,
प्यार के अतिरेक से
जी गया है भर।

दूसरे ही क्षण
दूरियों का यह विकल अहसास,
बहुत जल्दी आ रहा हूं
प्रिय तुम्हारे पास।

मेरा घर

यादों में घिरा आता सुहाना गेह ।
है नजर आता मुझे वह
सीढ़ियों पर बन्द होता द्वार ,
लहरता जिस में सुरक्षा का
भरा निस्सीम पारावार ।
जिन्दगी चुकती मगर चुकता नहीं जो नेह ।

वह सहन के पास का कमरा
भर बांह में लेता जहां आराम ,
प्रीत की निर्धूम जलती वर्तिका
आठों पहर निष्काम ।
सब तपिश चुकती बरसता प्यार का जब मेह ।

सुन रहा हूं खोलने को
द्वार आती पास वह आहट ,
उमड़ ओंठों पर किया करती
मुझे संकेत नित जो मुस्कराहट ।
पुलक की पावन बही गंगा नहायी देह ।

कर रहा महसूस मिलती
जो सहज में प्रीत नित अभिनव ।
प्यार जो जीता सदा मैं
पर नहीं करता कभी अनुभव ।
पूर्णतः देता मुझे जो अघर का मधु स्नेह ।

धरती का चांद

यो धरा के चांद का
नभ में हुआ लो अवतरण ।

जो लजीले नयन अब तक लाज से झुकते
नापने हैं अब गगन की परिधियां ,
सिमटते ये अंग अब तक सकुच बांहों में
बाहुओं में बांध लेंगे आंधियां ;
रूप से अभिभूत विस्मित सब दिशाएं हैं
नमित हो नक्षत्र नभ के चूमते नाजुक चरणे ।

कल्पना में तारकों से सेज सजती थी
सत्य नभ की सेज सज आई ,
छंद में अब तक बताया चांद था जिसको
ली जवानी ने गगन में अलस अंगड़ाई ;
लो मिलन की रात नभ में सज गई है
सज गये हैं नव सृजन के उपकरण ।

सृजन के मीठे प्रहर में मौत की रागें
शपथ है नही कोई गाये ,
वैलन्तीना ने बहाई प्रेम की गंगा
शपथ है उस में न कोई जहर फैलाये ;
इस धरा के चांद का यह मिलन हो चिर शाश्वत
लें बलाएं चाद तारे और अरुण ।

भूले बिसरे गीत

कभी के भूले बिसरे गीत
याद आते हैं मुझको आज।

ठुमक की भोली किलकारी
किलकमय शैशव का संसार,
नयन में चमकी चिनगारी
चकित विस्मय का जो आगार।
चेहरे याद नहीं आते
हृदय में गूंज रही आवाज।

जवानी की वह मीठी भूल
चाह को प्यार समझ डाला,
कसक के उभरे इतने शूल
आशा को सार समझ पाला।
प्यार की तृष्णा से आविष्ट
उठाये मैंने जिनके नाज।

मीत की याद सहेजी है
गीत की कड़ियों में पोकर,
लहरती मेरे अंतस में
दर्द की लड़ियों में धोकर।
जगत के मन को लेता मोह
मस्त गीतों का यह अन्दाज।

विश्वास का संबल

क्योंकि मेरे सामने हरदम किनारा
इसलिए मुझको न भय मंझधार।
सागर में उठे यदि ज्वार तो इस में नई क्या बात है
झंझा का प्रभंजन का उदधि से तो पुराना साथ है,
झंझा भी प्रभंजन भी भयानक ज्वार आयेंगे
चलने के बहुत पहले इन्हें मैं कर चुका स्वीकार।

मतलब क्या शिकायत से अगर हो दूर ही मंजिल
मंजिल तक पहुंचने मे कब थी राह की मुश्किल,
कोई राह ऐसी भी जहां मुश्किल नहीं होती
मिटना शर्त मिलने की अगर तो भी नहीं इन्कार।

ली थी साथ रहने की शपथ वो छोड़ दें तो क्या
ये तूफान ही तो हैं अगर रुख मोड़ दें तो क्या ?
लंगर खोलने तक ही शपथ की बात का मतलब
उसके बाद जाने किस तरफ को ले चले पतवार ?

साथी छोड़ ही दें टूट ही जाये न क्यो पतवार
जिनका भी रहा विश्वास निकले व्यर्थ वे आधार,
मैं असहाय बेबस चिर अकेला हो गया फिर भी।
एक अडिग विश्वास है पास पारावार।

जन्म दिन पर

बयालीस वर्ष
इन्होंने मुझे भोगा
या मैंने इन्हें
कौन चीन्हें ?

अधिक तो इन में से
मैंने अनायास ही जिये ,
बहुत थोड़े हैं
जिन्हें जीने के प्रयास
थोड़े बहुत किये ।

जो अनायास जिये
वे वर्ष
मेरे अपने तो नहीं ,
जिन्हें मैंने नियोजित किया हो
वैसे सपने तो नहीं ।

संदर्भ तो किसी और के हैं
जो मुझ से अनचाहे ही जुड़ गये
इनके बोझ से
मेरे संकल्प मेरे विश्वास
कुछ झुके
कुछ मुड़ गये ।

अंधेरे में मिली ये सीढ़ियां
बिना देखे
जिन पर चढ़ा हूं ,
व्यर्थता का एक घना ढेर
जो पैरों के तले

अनायास जमता चला गया
पाता हूं उस पर आज खड़ा हूं।

वास्तव में
यह मेरी उम्र नहीं है
किसी और की उम्र मुझ को लगी है,
मेरी उम्र तो
होगी कोई तीन चार वर्ष
मेरे अपने तीन चार आंसू
मेरे अपने भोगे
तीन चार हर्ष
थोड़े से संघर्ष।

अस्वीकारी से

मैंने कहा मेरी बात सुनो
तुमने कहा झूठ है,
क्या झूठ है बात तो तुमने सुनी ही नहीं
उसकी सत्यता सुनी ही नहीं,
नहीं सुनोगे
नहीं सुनोगे ।
ऐसा नहीं है कि सुनलोगे तो
मानना ही पड़ेगा,
उसे अस्वीकारने के लिए भी
जानना ही पड़ेगा ।
मानो मत जानो तो सही
सत्य असत्य को पहिचानो तो सही,
घटनाओं के बनाये गये
ये अखबारी क्रम,
सत्य की पहचान देने का
उत्पन्न करते भ्रम ।
सतह पर डूबते रह
गहराइयां पहचानने की बात
आवरण के पृष्ठ से सब जानने की भांति ।
मैं नहीं कहता
कि जो मैंने जाना वही सत्य है ।
पर उतनी बात तो है ही
उस में जानने लायक अवश्य कुछ तथ्य है ।
सत्य तो सान्निध्य से
ही उभरता है,
वरना सत्य क्या है
मात्र जड़ता है !

आत्मबोध

अपने आपको पहचानना
बहुत कठिन बात,
जो आप हैं
वह जानना
बहुत कठिन बात।

बुद्धि का पैना
नुकीला अस्त्र
हर बात को औचित्य का
पहना गया सुन्दर सुहाना वस्त्र,
सत्य को निर्वस्त्र करके
जानना बहुत कठिन बात।

बहुत निडर होते
जिन्दगी के तथ्य,
अपनी जरूरत के
लिए मुश्किल नहीं पर
ढाल लेना कथ्य,
कथ्य और तथ्य को सत्य के परिप्रेक्ष्य में
ढालना बहुत कठिन बात।

विराट का बोझ

मैं अपने को विराट करने को
विचारों का सम्राट बनने को
छोटी बात नहीं कहता ,
मोटी बातों की मोटी चादर
सदा ओढ़े रहता ,
इन विराट बातों ने
मेरे छौने मन को
भार से आक्रांत कर दिया है ,
सहजता को
मौत से भर दिया है।
युग कोई क्षणों से परे जी सका है ?
बिना किसी पात्र के
सागर कोई पी सका है !
मैं भी तो छोटी छोटी बातें जीता हूं
फिर उनसे अलग रहने का आग्रह क्यों ?
जो भोगा जा सकता है
उसका शब्दों से अपरिग्रह क्यों ?

मैं रिक्त हूं

राह में चलते चलते
मैंने
अनायास ही
मन में भर लिए थे
कुछ आंसू कुछ मुस्कानें
और प्रतिबद्धता का सतही बोध।

इन्हीं को मैं देता रहा
अलग अलग परिवेश,
कभी उत्साह की मुस्कानें
कभी सिसकता हुआ क्लेश।

पर मन में बीज-से पड़कर
न ये आंसू पनपे
न ये मुस्कानें खिलीं,
राह में बटोरा गया दर्द
मेहमान की तरह आया
आखिर कब तक ठहरता ?

क्या हुआ यदि आज
मेरा कल नहीं साकार दिखता,
धुंधलाया हुआ है कुछ
पूरा नहीं आकार दिखता,
वह कुछ दूर है
उसे कुछ निकट आने दो,
प्रयासों से उसे कुछ निखर जाने दो।

वही कल का सत्य तुम्हारा
मर रहा है आज,
लो सुनो
साकार होते हुए
उस कल की आवाज!

नियोजित

लगातार चलना
मेरी नियति है
एक आदत है
विवशता है ,
चलना एक शिकंजा है
जितना मैं चलता हूं
उतना ही कसता है ।

पहले मैं चलता था
गली - गली
डगर - डगर
गांव - गांव
नगर - नगर ,
जहां देखता ठंडी छांव
सुस्ताता था ,
कहीं ऊब उठता था
तो मस्ती से
गुनगुनाता था ,
रास्ते में आते थे अवरोध
उनसे जूझता था
नये रास्ते बूझता था ,
तब
मेरा चलना था
मेरी अपनी गति से
न कि नियति से ।

और अब
मैंने अपने लिए

रेल की पटरिया डाल ली हैं,
सभी रास्तों से कटकर
सभी मुश्किलों से हटकर
मैं एक रास्ते से लग गया हूं।

यहां सब कुछ सुनिश्चित है
चलने और ठहरने का समय
विश्राम के स्थल
और गंतव्य
स्थिर मंतव्य
जाना पहिचाना भवितव्य,
रास्ते में कोई हेर फेर नहीं
जल्दी नही देर नही
नही मैं मन से नहीं
किसी और के दिये सिगनल से
चलता हूं ठहरता हूं,
किसी तरह से सुलग गया हू
इसलिए जलता हूं।

मैं—कटा हुआ पेड़

मैं कटा हुआ पेड़ नहीं
पेड़ का कटा हुआ तना हूं,
आकार में चाहे पेड़ हो उतना हूं।

पेड़ तो किसी तरह से
वापिस बड़ा हो सकता है
उसके जमीन में अंगद-से पांव गड़े हैं
इसलिए साहस से खड़ा हो सकता है।

तना तो कटा है
उसे और भी कटना है
अभी भले बड़ा हो
आखिर तो उसे घटना है।

जो जमीन से उखड़ जाये
अपने बोझ से जकड़ जाये
वह आकाश को चुनौतियां
देगा कैसे ?
हो सकता है जी ले जैसे तैसे।

गंतव्य

संशयों के पार मुझको
दीखता गंतव्य,
अभी तो पार कर पाया थोड़े बहुत
प्रारम्भ के कुछ मोड़,
अभी तो शेष है काफी लगानी
मुश्किलों से होड़।

इस मोड़ पर आकर मुझे
संशयों ने घेर डाला है,
संकल्प थोड़े हिचकिचाये हैं
प्रेरणाओं का हुआ धूमिल उजाला है।

मुश्किलों पर जीत मेरी
चिर सुनिश्चित है,
संकल्प मेरे दिव्य
लक्ष्य मेरा भव्य।

संकल्प की ये रक्तिम शिराएं
उपलब्धियों के पूर्व का आभास,
संघर्ष की चिर ज्योति से
प्रभासित हो गया भवितव्य।

अनचाहा श्रम

मेरे चेहरे पर अनचाहे
श्रम ने अपने छोड़ दिये हैं चिन्ह।

जैसे सागर का उमड़ता ज्वार
किनारों पर करता वार,
और विवश किनारे
ढोते है उस मार का
प्रबल सहार,
और उनका चेहरा धुनता नही
कटता है !

आत्म स्वीकृति

जो संघर्ष जिये नहीं जाते
सिर्फ सोचे जाते हैं
वे अपना फल कहां पाते हैं ?

उनको सोचना ही वृथा है
पर सोचना एक प्रथा है
मैं उस प्रथा पर चलता हूं
समझता हूं रात दिन गलता हूं
पर मैं बढ़ पाया नहीं हूं,
जहां पर था
वहीं का वही हूं।

अनुत्तरित प्रश्न

बात उठनी तो है
पर निमनी नहीं
बड़े बड़े प्रश्न करता है मन
पर रहते हैं अनुत्तरित,
रात घिरती तो है
पर कटती नहीं।

अनुत्तरित प्रश्न
कांटों - से चुभ जाते हैं
निकलते ही नहीं,
अजब मेघमाला है
उमड़ती तो है
पर छंटती नहीं।

तराशना चाहता हूं
किसी तरह कांटे निकलें तो !
पर विवेक का नश्तर
उलझन भरा,
जिस से पीर बढ़ती तो है
घटती नहीं।

कोल्हू के बैल - सा
मैं लीक पर बराबर घूमता हूं,
बढ़ रहा हूं
सोच करके झूमता हूं,
चलना भले हो
किन्तु यह बढ़ना नहीं है,
इस तरह से
सिमिट चरणों में कहीं आती नहीं है!
यह चलना,
कोई प्रयास नहीं आदत है
या कि विवशता है,
जिस में तिल ही नहीं
चलने वाला भी पिसता है।

रक्त और उसूल

मेरे मित्र
तुम बहुत भले हो
मन के बहुत ही उजले हो,
बात करते हो रगों में दौड़ते हुए लहू की
जो तुम्हें व मुझे
अनायास बिना मांगे बिना मोगे
विरासत में मिल गया है,
जिस के मिलने से
तुम्हारा मन तुम्हारा तन
तुम्हारा जीवन
सब कुछ मुझ से एक तरह से जुड़ गया है,
सिल गया है,
यहां तक तो ठीक है
पड़ गई जो लीक है
उस लीक पर चलना ही पड़ेगा,
मोम जब सुलगा है
तो उसे गलना ही पड़ेगा।

पर मेरे मित्र बात है यह
कि कुछ उसूल हैं
जो मुझे अनायास ही नहीं मिले,
इन उसूलों को मैंने परखा है
उनको मैंने भोगा है,
इनकी भित्ति पर मैंने सपनों को
सँवारा है सँजोया है,
नहीं है किसी और ने इनका बीज
मेरे मन में बोया है,
पर इन्हें मैंने

एक सहज प्रवाह है
एक मीठी धड़कन है,
और जिसे जाना नहीं
सिर्फ माना जाता है,
पर खून जब सड़ता है
तो तराशा भी जाता है,
यह दूसरी बात है
कि तुम समझो
उस मे अभी भी जीवन का उत्स है,
उसे तराशा नहीं
जाना चाहिए,
अभी तो मैं भी यह मानता हूं,
भेद है तो स्थिति का ही न ?
पर उसूलन खून खून को
तराशता तो है ही।

इसलिए उलझन हो तो हो
मैं खून के नाम पर
खून से खून का शोषण नहीं होने दूंगा,
अपनी हंसी बनाने के लिए
किसी को मेरे ही खून के आंसू की लड़ें
नहीं पिरोने दूंगा
मेरे खून के आंसुओं से
किसी को खून के नाम पर
अपना आंगन नहीं धोने दूंगा।

खून तो बिना मांगे मिला है मुझे
उसूल तो मेरे अपने बनाये हैं,
वे मेरे रहे हैं आगे भी रहेंगे
मेरे साथ साथ सब कुछ सहेंगे
हां यह मेरा खून

जो मेरे खून ने मुझे दिया है,
उसी खून पर गिरेगा
उसी खून में जज्ब होगा,
उसे मैं कहां ले जाऊंगा,
उसे यहीं पाया है
यहीं खो पाऊंगा।

इस खून को सार्थक करेंगे
मेरे ये उसूल,
जिन उसूलों को
मेरे खून ने पाला है पोसा है,
यह झूठ है
कि मेरे खून व मेरे उसूलों में
कोई भेद है,
इसी खून की कशिश ने
पैदा किये हैं ये उसूल,
क्या हुआ यदि खून से न आकर
कुछ वातावरण व परिभाषित शरीर से
मेरे मन में समाये हों ये उसूल,
तुम भी तो मित्र इसी तरह से
आये हो,
आकर मन में समाये हो
नहीं है तुम किसी कोख के जाये हो,
हमारे खून का कोई अलग हुआ तो क्या
पर इसीलिए क्या तुम पराये हो,
चाहे खून हो चाहे उसूल
मिलते तो दोनों से ही हैं
पर इस से क्या होता है,
बात तो यह है
कि वे सच्चे हैं या नहीं
वे अपने हैं या नहीं।

मुझे भी भला लगता है
तुम्हारा यह रोष
यह गहरा आक्रोष,
ऐसा नहीं है
कि इस तड़पन को मैंने नहीं जाना है,
मैंने भी उसे ठीक इन्हीं सन्दर्भों में पहचाना है,
पर सच मानो मित्र
तुम्हारी जैसी ही तड़पन से
जन्मे
बगूलों के यह उनचास पवन,
जिसे न कोई रोक सका है
यह है वही सावन,
जो निश्चय ही बरसेगा
डरो मत
इसी से हमारा खून सुवासित होगा
सरसेगा।

निरर्थक

मैं एक बीहड़ पर्वत
स्थिर कठोर
सृजन हीन,
कभी कभी
मूसलाधार वर्षा
आती है,
मुझ पर
जीवन
जल का ढेर का ढेर
बरसाती है,
मुझ में पर
कुछ नहीं
समाहित होता,
जल की धार
अपनी याद के
छोड़ती कुछ निशान,
नहाती मेरी देह
पर नहीं प्राण,
कभी कभी
हरियाली
आसमान से उड़कर
एक बार मुझ पर
अनायास आकर टिकती है
गाड़ना चाहती है अपने पांव,
अपने लिए निरखना चाहती है हरी छांव,
उसी छांव
का टुकड़ा

मुझ पर हसता ,
वरना
सदियों से
लगता है
मैं रहा जलता ।

निस्सीम

मेरे आंगन में
एक बगिया सहज ही उग आई है,
मैं उसका प्रहरी,
उसके चारों ओर घेरकर
सीमा बनाना चाहता हूं गहरी।

चाहता हूं उसकी क्यारी क्यारी
छोटी - छोटी हर एक डारी
जैसे मैं चाहूं सजे,
कली कली की चटख का स्वर
मैं जिस राग में चाहूं
उसी में बजे,
एक तरह से
मैं उसे सभी ओर से काटकर
अलग करने को तत्पर
अपनी ही मर्जी के रंग भरने को आतुर।

पर
पगली बगिया की जड़ें
पैंठती हैं,
अनकटी धरती के भीतर
सीमा को तोड़,
बिखरती हुई डालियां
तोड़ कर परिबन्ध
सहज ही ऐसी
झुक पड़े छोर।

पराभव

एक वह वक्त था
जब मैं खुश रहता था,
दुख अक्सर आते भी थे
तो उन्हें सुख की छांह समझ
सहज ही में सहता था,
मस्त दरिया की तरह बहता था।

फिर एक वक्त आया
जब मैं उदास हो आया,
अपनी तपिश औऱों की तपिश का
और अधिक गहरा हो चला साया,
औरों के दुख को अपना बना
मैं जो था वह न रहा
तुम तुम और तुम बन गया।

और आज
न तो मैं
उदास,
न मुझ में वह मस्ती है
न मेरी हस्ती है।

अपने सुख को चीन्ह नहीं पाता
औरों के दुख को बीन नहीं पाता,
मैं तटस्थ हूं
कहने को बस व्यस्त हूं
सच तो यह है
मैं हो रहा ग्रस्त हूं।

तटस्थ

मेरे सामने है
पानी का लम्बा विस्तार
पर दिखता नहीं
उसे ढंक लिया है
'स्टेटस्को' की तलछट ने,
जिस तलछट को
मैं मान बैठा हूं अन्तिम सत्य
एवं अपरिवर्तनीय यथार्थ।

मेरे पास
पद्मासन लगाकर
बैठे हैं मित्र,
कहते हैं
किनारे पर बैठकर
अपनी तलछट के माध्यम से
उन्होंने जान लिया है यथार्थ
ढूंढ लिया है सत्य
ऐसा है उनका कथन,
शोर करते हैं
पुकारते हैं
मुझे अक्सर
धिक्कारते हैं.

मैं जानता हूं
यह तलछट बुरी है,
और नहीं जानता
कि यह तलछट नहीं
तो पानी भी होगा

इस तरह बिखरना बहुत महँगा पड़ेगा,
तो फिर क्या किया जाय
सिर्फ शोर
अरे भाई
शोर करने से नहीं हटती काई,
भले ही
तुम तटस्थ रहकर
पुकारा करो,
और मैं तटस्थ रह कर चुप रहूं
दोनों में कोई मौलिक भेद नहीं,
तुम्हारे स्वर में तीव्रता है
मेरा स्वर धीमा है
इसका मुझे खेद नहीं,
खेद है तो यह
कि मन की गुफा से टकरा कर
लौट लौट
रह जाती है आवाज,
जहां जरूरत तो यह है कि संघर्षों के मैदान में
तुम्हारी और मेरी आवाज जुटे,
उनके अटूट स्वरों से
आलोड़ित हो
बज उठे साज पर साज।

मन में शक्लों की एक भीड़ लगी ऐसी
कि एक भी शक्ल पहचानी नहीं जाती,
मन में आवाजों का शोर जुटा ऐसा
कि एक भी आवाज जानी नहीं जाती,
इस भीड़ में अनायास डूब गया हूं
इस शोर से कभी का ऊब गया हूं,
पर यह चक्रव्यूह ऐसा कि जिसका टूटना मुश्किल
यह ऐसा प्रवाह कि जिससे छूटना मुश्किल।

अकेला

मेरे आस पास
बहुत शोर है,
शोर के बीच
मैं अकेला हूं,
ठीक वैसे ही जैसे
अनगिनत तारों के बीच अनछुआ चांद

क्षण क्षण कटे बटे
पल छिन में बीता हूं ,
एक बूंद अमी
एक बूंद नमी
मिल गई तो क्या
मैं निरा प्यासा हूं रीता हूं ,
तृप्ति का बोध
तनिक नहीं शेष ,
प्यास की अवधि
कम नहीं लेश ,
ऐसा लगता है
कि मैं दिन एक बीता हूं ।

उलझन

बड़ी बात जीता नहीं
तो कहूं ही कहां,
रहने को नहीं घर
तो रहूं ही कहां !

धार ही नहीं बही
तो फिर बहूं ही कहां,
कहना और जीना
एक ही बात,
जो जी नहीं पाता
उस बात को गहूं ही कहां !

क्षमता

मैं वह पेड़
जो बाहर तो पनपता है
आकाश को छूने के लिए तड़पता है,
पर जिसकी जड़ें कमज़ोर हैं
सूखती जा रही हैं.
जिस में जीवन का रस नहीं
न जीने की क्षमता,
जितनी भी है
अन्दर ही अन्दर
सड़ती हुई सिमटा रही है,
इस तरह से
आकाश छूएगा कैसे,
सवाल खास है
जो टिका कैसे रहे।

वैविध्य

मैंने पहली बार
नहीं कही यह बात
उसको औरों ने बहुत बार कहा है,
फर्क इतना है
कि औरों से थोड़े अलग ढंग से
मैंने उसे सहा है,
बात वही होती है सत्य एक होता है
पर फर्क यही है अलग अलग स्थितियों में
तरह तरह से सब ने उसको भोगा है।

अहसास

दर्द का अहसास
कहा नहीं जाता
जब तक सहा नहीं जाता,
जैसे किनारे पर बैठकर प्रवाह में
बहा नहीं जाता।

करना ही व्यर्थ विचार
दर्द की उपलब्धि का,
दर्द सहने में नहीं जब तक
हो सके प्रतिबद्धता।

मिल गया जब दर्द
तो प्रयास का प्रश्न क्या,
प्रतिबद्धता का दर्द ही ऐसा
कि एक बार मिले बाद
कहे बिना रहा नहीं जाता।

दिग्भ्रांत

सोचता तो बहुत हूं
कि मैं कुछ करूं,
जो करना चाहता हूं
उसके लिए
जरूरी हो तो मरूं।

पर बात यह है
जो करने की कल्पना मन में बनाई थी
उत्साह से जो कल्पना मैंने रचाई थी,
संशयों से भर गई वह कल्पना
पदों से कुचल धूमिल हो चली वह कल्पना,
भविष्य का और कोई आकार जोड़ नहीं पाया
आज को मैं कल की ओर मोड़ नहीं पाया,
इस से बैठा हूं मैं विमूढ़ और श्लथ
धूमिल हो चले हैं मोड़ धूमिल हो गये हैं पथ।

लक्ष्यहीन

तुम स्टेशन का प्लेटफार्म मत बनो
जिस में विचार व संकल्प यात्री की तरह
बतियाते हैं,
हिलते हुए रूमाल
पुछते हुए आँसू
क्षणों में विदा कराते हैं।

उस से देश तो देश
नगर नहीं बनता,
और तो और
घर नहीं बनता।

सुन्दरता

सुन्दरता
मेरे पास से निकली
जैसे मेघों मे
एक बिजली कौंधी,
मैंने नहीं देखा
दिखी अपने आप,
मैंने नहीं खींची
अपने आप ही पड़ गई थी छाप।

कथ्य और तथ्य

कथ्य ग्रौर तथ्य
दोनों में ग्रन्तर है,
कथ्य है गगन
तो तथ्य है धरा,
कथ्य हवा में बोग्रो
पनपेगा नही जरा,
कथ्य जब तथ्य से मिला
सत्य तब उभरा निखरा सवरा।

बदलना सहज नहीं

अपने आपको बदलना
सहज तो बात नहीं,
बदलने का अर्थ
यदि मन को बदलना हो कहीं !

मन कोई चिकनी दीवार तो नहीं
जिस पर जब चाहें
जो भी रंग लगा दें,
टूटी हुई बेल भी नहीं
कि जैसे तैसे
तोड़ मरोड़कर
चाहे जिस ढंग से सजा दें,
रीती हुई गिलास नहीं
इस में जो चाहे भर दें,
गीली अनगढ़ी मिट्टी भी नहीं
जो चाहे रूप धर दें ।

बूंद बूंद रक्त का प्रवाह बना है
हर बूंद में जिन्दगी का अर्थ लगा है,
कितने ही कोनों से
गुजारे गये तार,
अनायास बँधे ही जाते विचार,
इस तरह से लगातार जिन्दगी बनी है
तब कहीं जिसकी यह मन भी बनी है,
जो टूट तो सकती है
बदल नहीं सकती,
अपने कोष से अलग
वंचित कर नहीं सकती ।

असफल विद्रोह

विद्रोह की कसी हुई मुट्ठियाँ
मन के बंद द्वार
प्रहार और अधिक तीव्र प्रहार ।

भीतर नपुंसक
भयभीत आक्रोश,
आशंकाओं से संत्रस्त
उत्साह की प्रतीक्षित लौ,
शायद विद्रोह इस द्वार को खोलेगा,
भीतर को समाहित करेगा
भीतर और बाहर
विद्रोह ही विद्रोह का स्वर बोलेगा ।

पर बाहर की ओर खुलने वाले मन के ये द्वार
कितने ही हों प्रहार
खुलते नहीं और अधिक जुड़ते,
विद्रोह ही इस से टकरा
होते व्यर्थ मुड़ते ।

मित्र बैठ कर लें बात
व्यस्तता के ये कसैले पल
व्यग्रता के ये कटीले क्षण
थोड़ी देर उनका छूट जाये साथ ।

सोच का उलझन भरा तम - जाल
उत्तर नहीं
बस सवाल ही सवाल,
बातों के शिकारों से भरे यह ताल
संघर्ष बेमतलब जुटाते खिन्नता
रोज बढ़ती जा रही है रिक्तता,
कुछ तो घटेंगे बढ़ते हुए आघात ।

अप्रयोजनीय

जिन्दगी
टूटी हुई माला
कि बिखरे फूल जिसके
इस में नहीं है क्रम
न कोई तारतम्य
बस एकता का भ्रम,
न कोई व्यवस्था है
यह कैसी अवस्था है !
वह प्रयोजन
जो कि उसको एक करता था
एक क्षण व दूसरे क्षण की
दूरियों को सहज भरता था,
अब नहीं है
तुम भले कह दो जिन्दगी है
सत्य में तो एक बस
घटना वही है।

मतभेद

मतभेद
मतभेद नहीं विग्रह
विग्रह नहीं विच्छेद
मतों से तो बढ़ा जाता है
विग्रह से विच्छेद से घटा जाता है।

मत है एक आधार
विच्छेद टूटना हुआ कगार,
हम रह गये शेष
टूटते हुए कगार,
न तो स्थिर कूल
न गतिमान धार।

आकृतियां

आधार
आकार एक
आकृतियां और अधिक आकृतियां,
कौनसी आकृति
आकार का सही रूप
कौन सी मात्र चमक
कौन असल धूप ?

आकृतियों की एक घनी भीड़
आकार हुए झूठे,
विश्वास के आलम्ब
लग रहा जैसे
आधार सभी टूटे ।

कुछ स्थितियाँ

अपेक्षा

जब सुहानी धूप चाही जाय
शीत की लहर नहीं
मिल जाय थपकती बयार,
जब एकान्त चाहा जाय
तब भीड़ तो न जुटे
पर चाहतों की कम पड़े कतार।

प्रतीक्षारत को प्रतीक्षित न मिले
मनचाहा मिले बार-बार,
जिस पर न तो आपत्ति
न किया जा सके आक्रोश
पर मन गुनगुना रहे लगातार।

अवकाश

व्यस्तता की घुटन
व्यवस्था की उकताहट,
करीने से
सिलसिले वार चलती
जिन्दगी की थकान
झुंझलाहट।

इन से अवकाश मिले
मन की तरह कर या तो नहीं है
पर जो सुधर नहीं हो पाई
वो काम किये।

जो करना है
उसकी फेहरिस्त लिए दिन न उगे
जो न किया जा सकना उस से भारी
सपनों से विहीन रात मिले,
न कुछ करना पड़े
मन हो सूना आकाश,
जो न चाहा जाय वह न हो
ऐसा हो सके काश !

व्यर्थता

कर्मरत
पर दिशाहीन श्रम,
अर्थ रिक्त
पर अर्थ का भ्रम,
मजिल की पहचान बिना
गतिशीलता का क्रम !

मैत्री

चाही न जाय
पर अनचाही नहीं,
न हो अनायास
पर सायास भी नहीं,
न मिले तो अनपहचानी रहे
मिलने पर भी कहा जा सके
यह वही यह वही।

मजबूरी

आया जैसे एक ज्वार
जो फैलता ही जा रहा
ऐसा अजब विस्तार ।

किनारे जो कभी साफ दिखते थे
अब नहीं दिखते ,
जानकारी ज्ञान सब सज गये हैं हाट पर
रोज सुबह - शाम बिकने ।
मुझ से देह लेकर मुझको
एक भस्मासुर जलाने आ रहा है ,
यह नहीं मालूम किंचित
क्या हो रहा है हश्र मेरा
और होने जा रहा है ?

जो करना है
उसकी फेहरिस्त लिए दिन न उगे
जो न किया जा सकता उस से भारी
सपनों से विहीन रात मिले ,
न कुछ करना पड़े
मन हो सूना आकाश ,
जो न चाहा जाय वह न हो
ऐसा हो सके काश !

व्यर्थता

कर्मरत
पर दिशाहीन श्रम ,
प्रयं रिक्त
पर अर्थ का भ्रम ,
मंजिल की पहचान बिना
गतिशीलता का क्रम !

मैत्री

चाही न जाय
पर अनचाही नहीं ,
न हो अनायास
पर सायास भी नहीं ,
न मिले तो अनपहचानी रहे
मिलने पर भी कहा जा सके
यह वही यह वही ।

मजदूरी

धंधा जैसे एक ज्वार
जो फैलता ही जा रहा
ऐसा गजब विस्तार ।

किनारे जो कभी साफ दिखते थे
अब नहीं दिखते,
जानकारी ज्ञान सब सज गये हैं हाट पर
रोज सुबह - शाम बिकने ।
मुझ से देह लेकर मुझको
एक मायापुर बनाने जा रहा है,
यह नहीं मालूम कि चित्र
क्या हो रहा है हृदय मेरा
और होने जा रहा है ?

वर्षा और मैं

मैंने आज
मेघों को
बिजली का हाथ पकड़
अपने ठिकाने पर पहुंच
धुआंधार बरसते देखा है,
उनकी फुहार से सिंचित
धरा की सुगंध को
समीर में घुल कर
सरसते देखा है,
समीर की मुझे गुदगुदाने की
कोशिश
लेकिन बेकार हो गई,
मैं अपने कमरे की चहार दीवारी
से घिरा
उन संदर्भों से कटा
इस कमरे में दिनों से घुटते हुए
जी रहा हूं,
समीर
दरवाजे पर दस्तक लगा
चला गया है,
मैं अपने हारे मन से
निकले समीर को
देखता हूं
देखता हूं,
इतना स्तब्ध हो गया हूं
कि उठ कर खिड़की तक
नहीं खोल पाता,
जिस से जो दीखे देख खिड़की

तंद्रा

बादल की लिहाफ़ ओढ़
सो रहा आकाश
निष्क्रिय कर्महीन,
इस का कोई अंग नहीं हिलता
जल्दी ही उठेगा
ऐसा कोई ढंग नहीं दिखता,
हाँ कभी कभी अनायास
जब हिल उठता है,
करवट बदलने या यों ही
तो कोई अंग चमक उठता है,
शायद हाथ
या सिर अथवा
दूसरे ही क्षण पुनः लिहाफ़ की शरण।

आकाश स्वयं तो उठेगा नहीं
यह दूसरी बात है
कि तूफ़ान ही लिहाफ़ को एक ओर कर दे
आकाश को नींद से भर दे
और उठने को मजबूर कर दे,
और जहाँ तक लिहाफ़ का प्रश्न है
तूफ़ान के वेग से
फटकर आकाश से गिरे
कभी धीरे
कभी वेग से झरे।

सान्निध्य

उधर देखो
मेघों का हाथ
पर्वत ने गहा
मेघ ठिठका
कुछ रुका रहा
पर उसे तो जाना था कहीं ग्रौर
बरसने के लिए,
धरा का गात परसने के लिए
सूखा प्रपात सरसने के लिए,
पर्वत - गरिमामय हो तो हो
उसके ग्रालिंगन में बंधा नहीं
रहेगा वह,
उसका जहां होने का निश्चय है
वहीं रहेगा वह ।

याद

झील के चारों तरफ
जो उजागर बत्तियाँ हैं
उन्हीं के बिम्ब
लहरों ने भर लिए हैं अंक में ।

याद सपनों की
मन की झील में
कुछ इस तरह से ही लहरती है,
फर्क बस इतना,
कि बत्तियों के बंद होते ही
बिम्ब बुझते,
याद मन से जा नहीं सकती,
शायद अब ठहरती है ।

खेत खेत से मिलों मिलों से
होता नव अभियान,
आज विधाता बना धरा का
है मजदूर किसान।

मुक्ति का स्वर्णिम सवेरा

उधर नभ की अजानी वीथियों में
पर पसारे उड़ रहा इन्सान
झुक रहे नक्षत्र
खुलते जा रहे हैं राज सारे चाद - तारों के,
उठ धरा से देखता हूं
तो सहज दिखते
बाहुओं में बांह डाले
फैलते विस्तार
इस धरा के दो किनारों से।

दूरियां इन्सान को करती समर्पण
और इन ऊंचाइयों के
गर्वधारी हर शिखर का झुक रहा मस्तक,
चांद के और सूरज के
पहुंच प्रांगण में
उनके रहस्यों के कपाटों पर
दे रहा इन्सान अब दस्तक।

ज्ञान का वामन चला है
नापने को आज तीनों लोक
हर हृदय का धुल रहा अज्ञान
फैली धूप
जैसे ज्ञान का आलोक।

जानता है आज तो इन्सान
अपने सब प्रयासों की
दिशाओं को,
तोड़कर मशीन की इन जड़ परिधियों को
विजित करता है

विचारों की हवाओं को ,
बन्द करके द्वार रोके से नहीं रुकती
सहज ही फूटती सूर्य किरण
और आँखें बन्द करने से नहीं रुकता सवेरा ,
जुल्म की संगीन के पहरे लगाने से
हो सका है क्या कभी भी चिर अंधेरा ?

तुम भले ही कुछ दिनों तक
सपनों की राह पर पहरा लगालो ,
बांध अत्याचार की पट्टी नयन पर
सोच लो चाहे सवेरा रुक गया है
और कुछ खुशियां मना लो ।

उदधि किरणों का गगन में जो उमड़ता आ रहा है
आयेगा ही ,
मुक्ति का स्वर्णिम सवेरा
आ रहा है
आयेगा ही ।

मनुष्य की परम्परा

युग थके थकी नहीं
मनुष्य की परम्परा ।

पिघल चली धरा भले विदीर्ण हो गया निलय
घिरी घटा चली प्रचण्ड आंधियां लिए प्रलय,
निशा बिना प्रभात थी न सांझ थी न रात थी
सृष्टि ही रुकी - थकी मिटी दिशा थमा समय ।
सिमिट चला गगन भले
सिमिट चली वसुन्धरा
मगर प्रलय नहीं सका मनुष्य को कभी हरा ।

वेद के पुराण के विधान मे नहीं रुकी
शक्ति के समक्ष भी कभी कहीं नहीं झुकी,
मनुष्य की परम्परा रही सदा विकास की
मंजिलें बनीं भले न मंजिलें मगर रुकीं ।
राह थक गई भले
चरण कभी नहीं थके
रुकी मनुष्यता नहीं न जी मनुष्य का भरा ।

बांधकर गगन मनुष्य उड़ चला पसार पर
चीर वक्ष सिन्धु का बना चला नई डगर,
मनुष्य के लिए नहीं समय न दूरियां रहीं
मनुष्य योजनों चला पलक - पलक पहर-पहर ।
असाध्य को विजित किया
मनुष्य के प्रयास ने
खोलकर हृदय रहस्य ने मनुष्य को वरा ।

सिद्धियां मनुष्य की व्यर्थ हो सकें नहीं
विकास के लिए सहज शांतिपूर्ण हो मही,
पहरुए विकास के मनुष्य ने बना दिये

शक्ति की समर्थ ने बांह इस तरह गही ।
पहरए त्रिशूल के
विनाशकाय हो गये
पद दलित हुआ मनुष्य पद दलित हुई धरा ।

पयोधि से समर्थ आज जल नहीं बहा रहा
रक्त से मनुष्य के जमीन को नहा रहा ,
अस्थियां मनुष्य की खाद हो रही यहां
मनुष्यता मिटा समर्थ स्वर्ण को उगा रहा ।
सभ्यता मनुष्य की
मिट चली भले मिटे
रक्त की कसौटियां स्वर्ण को करें खरा ।

पर कभी नहीं सहा पाप को मनुष्य ने
डर कभी नहीं रहा शाप हो मनुष्य में ,
नियति से लड़ा मनुष्य बावजूद हार के
राह पर बढ़ा मनुष्य कष्ट को बिसार के ।
शक्ति से कभी नहीं
झुकी नहीं रुकी नहीं
क्रांति की विकास की मनुष्य की परम्परा ।

आज भी मनुष्य पर पयोधि रत्न वारता
वारता वसुन्धरा दिखा रही उदारता ,
है रहा दिनेश तेज मेघ नीर यों भरा
भेंट स्वर्ग ने दिया थाल मोतियों भरा ।
तेज से घुले हुए
नीर से धुली हुई
मनुष्य के लिए सदा मनुष्य की वसुन्धरा ।

इसलिए नहीं मनुष्य शक्ति को पुकारता
इसलिए नहीं मनुष्य मानवता निखारता ,

मिट मनुष्य ने नहीं इसलिए रचा जगत
कि तुम उसे मिटा चलो वह रहे निहारता।
दानुओं मनुष्य के
सावधान हो रहो
तुम नहीं रहे मनुष्य मनुष्य तो नहीं मरा।

प्रश्न और प्रश्न

इतना नीर हिमालय पर है
फिर भी धरती प्यासी,
खिले चमन के चमन यहाँ पर
फिर भी गहन उदासी।

करते गमन चाँद और सूरज
फिर भी यहाँ अंधेरा,
चला भागता पवन साथ
दम बैठा विकल सवेरा।

श्रम का खेत हमारा अब तक
पड़ा हुआ है बंजर,
हाथों के हल अभी तलक भी
नहीं चुने धरती पर।

जिसके कारण नीर नदी का
जाता निपट अकारथ,
कौन चमन के चमन लूटकर
पूरे करता स्वारथ।

कौन जलाने अपने दीपक
सबके दीप बुझाता,
कौन बहारों को बंदी कर
धरती को तड़पाता?

जिसने दूर किया है
बोलो श्रम का खेत हमारा,
जिसके कारण हल हाथों का
छूटा कूल-किनारा।

वीरों से वीरान नही है
धरती वीर प्रसवनी,
कष्टों से आजाद बनानी
हमको अपनी अवनी।

नीर सधे चमन खिले
हर दीप उभर आये,
मुक्त बहारों का साया
धरती पर छा जाये।

उर्वर श्रम का खेत
हाथ के हल न रहें बेकार,
फले धरा का भाग्य - विधायक
इंसानों का प्यार।

अधूरे सपन

अभी नही साकार हुए हैं सपने
रुंधे हुए हैं अभी रास्ते अपने ।

नही हथौड़ी मजबूरी का हुक्म उठाने पाये
नही कुदाली शोषण का नाज बढाने पाये
नही भूख के हाथों श्रम का वैभव ही लुट जाये
पूजी के हाथों मेहनत का भाग्य नही लुट जाये
मेहनत के त्योहार शेष हैं सजने ।

भरे नाज के मोती से धरती का धानी आचल
रहे दूध से भरी धरा की हरी छातिया छलछल
मानव के कंठों से मुखरित धरती गीत सुनाये
मा धरती की लज्जा जालिम नहीं लूटने पाये
शोषण के अवशेष शेष हैं मिटने ।

एक नये निर्माण को फिर अपना अभियान हो

धरती नया सिंगार करे
लहरें हहरें खेत हरे
नये तरानों से आबाद खेत और खलिहान हों

कल पुर्जे खट खट बोलें
वैभव के घूंघट खोलें
मेहनत के उन्माद में हर मजदूर किसान हो।

हम पानी को बांध दें
और पवन को साध लें
कुदरत की मर्जी का मालिक मेहनत-कश इंसान हो।

घर खुशियों से भर जायें
सपने सभी संवर पायें
युद्ध और विध्वंस मचाना और न अब आसान हो।

संरक्षण

मेरे देश की पावन धरती पावन है आकाश
कौन हिला सकता है इसके फौलादी विश्वास

यह विश्वास कि सारे खेत हरे हों
यह विश्वास कि सब खलिहान भरे हों
डारी डारी क्यारी क्यारी विहंस उठे कलहास

कल की कलियां चटखें मेरे बाग मे
श्रम का सौरभ फैले ढलकर आग में
दुश्मन मिटा न पाये सुखमय कल के ये आभास

सुनो सुनो से ये चहकी किलकारियां
मस्ती से रत फहरी महकी साड़ियां
नहीं मौत से कुंठित हो यह जीवन विन्यास

उठो बचाने खेत और खलिहान हैं
उठो बचाने मेहनत के भगवान हैं
अपने बच्चों की मुस्कानें कायम रखनी हैं
यौवन की ये मस्त उड़ानें कायम रखनी हैं

कोई मेरी इस धरती पर आंच लगाये ना
मेरे इस उन्मुक्त गगन में विष फैलाये ना
लूट न पाये दुश्मन अपने ये उन्नत उल्लास

मेरा देश

यह देश हमारा एक चमन
जिसकी हर केसर क्यारी में नाजों से बोया गया अमन।

उन्मुक्त पवन का अभिलाषी
उन्मुक्त गगन इसको प्यारा,
इसको न चाद सूरज से भय
इसको पुनीत तारा तारा।
किस ओर सवेरा होना है
किस ओर अंधेरा कोना है,
उन्मुक्त गगन के पंछी को
अधिकार दिशा का करे चयन।

उज्ज्वल भविष्य का अन्वेषी
सबका भविष्य इसको प्यारा,
इसको पावन सबकी सीमा
पावन हर घर आंगन द्वारा।
जो हर सीमा की मर्यादा
नही तोड़ने आमादा,
हर एक कली चटखे-फूले
यों महक उठे हरेक सहन।

कोई न पवन को बांध सका
कोई न गगन को बांट सका,
जो गरज गगन मे घिर आई
वह किसके रोके रुकी घटा।
कोई न पवन में विष घोले
किसे मालूम किधर होले,
किस खिली कली का मन मुरझे
और कौन उजड़ जाये उपवन।

अब और नही यह सम्भव है
कि एक चमन में सोना हो,
एक चमन में हँसी मिले
और एक चमन में रोना हो !

भवितव्य हमारा अलग नही
मँझधार किनारा अलग नही,
सब कहीं बहार वही आती
और वही बरसता है सावन ।

मुक्ति

लंगर खोलो पाल तान दो
पुनः मुक्ति का नव - विहान हो।

मेहनत को अवरुद्ध बनाने
तुमने ऐसी युक्ति लगाई,
लंगर कसकर बता सुरक्षित
तुमने बन्दी मुक्ति बनाई।

लहरों का डर बतलाने से
मुक्ति झुकी क्या ?
तूफानों से यह विकास की
नाव रुकी क्या ?
जो गढ़ती है नये मान को।

मेहनत का मस्तूल अभी तक
तना खड़ा है नहीं झुका है,
जुल्मों का तूफान इसी से
सहम किनारे अभी रुका है।

जुड़े मुक्ति की बांहों से
मेहनत की बांहें,
जुल्म झुके ये
हों प्रशस्त वैभव की राहें।
धरती का नूतन विधान हो।

आशा

रात थोड़ी और लम्बी हो गई है
पर सुबह तो आयेगी ही ।

इस अंधेरे में सही यह राह मेरी खो गई है
या निराशा पर निराशा चाह मेरी सो गई है
किन्तु मेरी प्रेरणाओं ने कभी रुकना न जाना
और मेरी साधनाओं ने कभी झुकना न जाना
बात थोड़ी और मुश्किल हो गई है
पर सुलझ तो जायेगी ही ।

कि लम्बी रात होने का मुझे क्यों भय जरा - सा भी
बला से रुक गया हो चांद नभ में कुछ डरा - सा ही
कि मेरी राह को तो प्रात खुद ही खोजता होगा
निश्चय भोर अपना साथ खुद ही खोजता होगा
भोर की किरणें जरा भरमा गई हैं
पर गगन में छायेगी ही ।

आकांक्षा

न जाने पार कितने मोड़ कर आया
न जाने साथ कितने छोड़कर आया
कि जीवन भर जिन्होंने साथ रहने की शपथ ली थी
थोड़ी दूर पर ही हाय उनको छोड़ते पाया
क्षितिज - सी जिन्दगी की राह मेरी है।

कितनी बार पाया कि रुक गया हूं मैं
झुक गया हूं मैं कि बिलकुल चुक गया हूं मैं
कि सोचा पा चुका इतना मुझे अब और क्या करना
कि तब ही चरण मचले और पाया उठ गया हूं मैं
गगन - सी जिन्दगी की चाह मेरी है।

संकल्प

राह ज्यों बढ़ी मेरे हौसले भी बढ़ चले

शबें अनेक ढल गईं अनेक चांद गल गये
ये सितारे वक्त के पांव में मसल गये,
ये समय की आंधियां कुछ इस तरह चली यहां
लुटे हजार काफिले लुटे हजार काफिले।

आस के निराश के राह मे मुकाम थे
मुश्किलों के हार के बहुत से विराम थे,
जुल्म दे रहे थे गश्त खूब धूमधाम से
मगर बुलन्दियों के गीत ओंठ पर उमड चले।

पाव मे मेरे नहीं कोई विशेष बात है
मजिलों की राहियों की अलग यह जात है
हम कदम है जिन्दगी भविष्य मेरे साथ है
चूमने कदम मेरे तड़फ रहे है फासले।

विकल्प

मैं गुनहृगा प्रात होकर
भोर का तारा बनू क्यों ?

क्या हुआ पहिले प्रहर में
बादली ने यदि छुपाया.
क्या हुआ यदि प्रथम पल में
राह में अवरोध आया ।
एक क्षण की तमिस्रा को नित्य करके
एक पल की हार को औचित्य करके
सुबह का विश्वास खोकर भाग्य का मारा बनूं क्यों ?

क्या हुआ पहले चरण पर
मिल गये यदि शूल मुझको,
क्या हुआ यदि प्रथम पग पर
मिल गई हो भूल मुझको ।
एक लघु से शूल को अभिशाप करके
एक क्षण की भूल को चिर पाप करके
नित नये पत का प्रणेता मैं थका हारा बनूं क्यों ?

अकाल

रेत रेत रेत
रेत के धूसर
रेत के खेत,
मेरे देश की
धरती पर छाया है
विनाश का प्रेत।

इस प्रेत से लड़ना जरूरी है
इसके बिना बात सब अधूरी है,
जरूरत हो बदल दी जाय धारा प्रवाहों की
और धरती सींच दी जाये,
सृजन के सर्ग चालू हों
अभावों की आंखें मींच दी जायें,
कौन सी उपलब्धियां जो पायी जा नहीं सकतीं
संकल्प की शक्तियां क्या ला नहीं सकतीं
सभी को सभी का प्राप्य मिल जाये
अगर हो यही अभिप्रेत।

कवि तुलसी

राम अगर हो सके अमर
तो तेरा ही सम्बल पाकर

बालू पर किसी चितेरे ने
कुछ रेखाए अंकित कर दीं,
उपकरण सजाये थोड़े से
थोड़ी सी सामग्री धर दी।
कल्पना चितेरी तेरी थी जिसने ये चित्र रचे सुंदर।

महलो से लाकर रघुपति को
झोंपड़ियों मे आवास दिया,
राजा से रंक बना तुमने
जन के मन का विश्वास दिया।
इन जीर्ण झोंपड़ो मे पलकर हो गई राम की कथा अमर।

डॉ. जॉसेफ के आत्मघात पर

अनबोई धरती बोने की
चाह लिए था जो,
हाथ देखकर खाली
मन में आह लिए था जो।

कुठाओं की गहन तमिस्रा
जिसे मिटानी थी,
सुख वैभव की मां धरती पर
फसल उगानी थी।

अज्ञानो के तूफानों से
जूझ रहा था जो,
चिर अभाव की कठिन पहेली
बूझ रहा था जो।

देख अभावों की छाया को
ज्ञान डर गया है,
आज कंठ अवरुद्ध बना
जॉसेफ मर गया है।

तुम हारे पर नही पराजय
हम स्वीकारेंगे,
हर मन मे जो सुप्त पड़ा,
प्रतिशोध उभारेंगे।

सुख-वैभव का सपन
अभी साकार बनाना है,
शांति मुक्ति का दीप
अभी आकार सजाना है।

अनबोई है बहुत धरा
हैं भूखे इतने देश,
अभी नहीं निःशेष हुए हैं
इस धरती के क्लेश।

ज्ञान पड़ा है सुप्त
मनों में घोर अंधेरा है,
जड़ विश्वासों की कुंठा का
मन में डेरा है।

संघर्षों का सर्ग कहीं यह
यहीं नहीं रुक जाय,
नहीं ज्ञान की पावन गरिमा
का मस्तक झुक जाय।

तुमने मर कर आज
सभी को फिर ललकारा है,
संघर्षों की बुझती लौ को
पुनः उभारा है।

सौगंध तुम्हारी धर्म-युद्ध
यह नहीं रुकेगा,
शोषण का परचम टूटेगा
और जुल्म का शीश झुकेगा।

स्व. जोसिफ भारतीय कृषि व विज्ञान अनुसंधान संस्थान के अधिकारी थे, जिन्होंने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी।

युद्ध खोरों से

झुका क्षितिज का शीश दिखाए गईं कभी की हार
ज्ञान मनुज का आज गगन में उड़ता पंख पसार
बादल - बरखा हाथ बांधकर हुक्म बजाते हैं
उसके इंगित इस धरती के भाग्य बनाते हैं ।

प्रलयवाहिनी धाराओं के पथ के पथ बदले
आज भाग्य के सब नियमों के इति और अथ बदले,
महलों को दे चरण नगर के न[illegible]र बदल डाले
छवि के खेल किये कितने ही विविध रूप डाले ।

जड़ वाचाल हुए मूक ने प्राणों को पाया
दिशा दिशा में आज कलों का कलरव है छाया,
इस धरती पर एक नया संसार उभर आया
एक नया ही अर्थ मनुष्य के जीवन ने पाया ।

दिल की भटकी धड़कन को भी तो लौटा लाये
और नयन की बुझती लौ को फिर सुलगा जाये,
देह तरासे अंग अंग में नई जिन्दगी आये
चकित मौत भी आज मनुज से हार हार जाये ।

इसी ज्ञान के जाये अणु में निलय बनाओगे
सहज धरा के प्रांगण में तुम प्रलय रचाओगे,
जुल्म रहे आबाद न्याय का नाम नहीं रह जाय
प्यास तुम्हारी बुझे जमाना चाहे सब बह जाय ।

जुल्मों से भरपूर इरादे हमें नहीं स्वीकार
हमको अपनी धरती माँ से युगों युगों से प्यार,
अपनी मेहनत से दुनिया का खूब करें शृंगार
मेहनत करने वालों का ही यह सारा संसार ।

अनबोई है बहुत धरा
हैं भूखे इतने देश ,
अभी नहीं नि:शेष हुए हैं
इस धरती के क्लेश ।

ज्ञान पड़ा है सुप्त
मनों में घोर अंधेरा है ,
जड़ विश्वासों की कुंठा का
मन में डेरा है ।

संघर्षों का सर्ग कहीं यह
यहीं नहीं रुक जाय ,
नहीं ज्ञान की पावन गरिमा
का मस्तक झुक जाय ।

तुमने मर कर आज
सभी को फिर ललकारा है ,
संघर्षों की बुझती लौ को
पुनः उभारा है ।

सौगंध तुम्हारी धर्म-युद्ध
यह नहीं रुकेगा ,
शोषण का परचम टूटेगा
और जुल्म का शीश झुकेगा ।

स्व. जोसिफ भारतीय कृषि व विज्ञान अनुसंधान ...
अधिकारी थे, जिन्होंने फांसी लगाकर आत्महत्या क...

चीन देश की ये सीमाएं
किस जनवादी की निर्धारित,
फिर भी इनकी चिर पावनता
क्योंकर तुमको इतनी ईप्सित ?

ये सूने हिम - मण्डित पर्वत
ये सूने - सूने वन - प्रांतर,
इनका मोल चुकाने बोलो
रोयें दर दर उजड़े घर घर।

सूनी हो बहनों की मांगें
सूनी हो मांओं की गोदी,
सूनी धरती के हित तुमने
सूनेपन की फसलें बो दीं।

इसलिए क्या माओ तुमने
पंचशील आकार दिया था,
तुम जीवन को मरघट कर दो
किसने यह अधिकार दिया था ?

अभी समय है धर्म सहोदर
संगीनों के पथ को छोड़ो,
शांति प्रसवनी भारत भू पर
अपने बढ़ते लश्कर मोड़ो।

नहीं मुड़े यदि तो सच मानो
हम तुमको रोकेंगे निश्चय,
हम जो जीवन सर्जन करते
ला सकते हैं महाप्रलय।

धरती के कुछ टुकड़ों के हित
भारत का यह युद्ध नहीं है,

माओत्से तुंग से

हिमगिरी के उन्नत मस्तक पर
कर डाला है पदाघात ,
गंगा - सी पावन सलिला को
कर डाला है रक्त स्नात ।

इन खूनी कदमों को रोको
रोको अपने गलत इरादे ,
नहीं तुम्हारे गलत कदम ही
मानव का भवितव्य मिटा दे ।

तुम्हें कसम उस सूं की माओ
जिसने मुक्ति सशक्त बनाई ,
अवरोधों की गहन तमिस्रा
प्राण जलाकर सहज मिटाई ।

सम साम्यों की मधुर व्यवस्था
तुम क्यों झुठलाने को आतुर ,
तुम जो धरती स्वर्ग बनाने
का संकल्प लिए थे सत्वर ।

सीमाओं से कहीं अधिक तुम
इन्सानों का प्यार बनाते ,
वर्गों - वर्गों से विहीन ही
दुनिया का आकार जताते ।

धरती के टुक टुक खंड छिन्न
क्यों माओ यह ताण्डव नर्तन ,
कैसा यह सीमा का झगड़ा
क्यों युद्धों का प्रत्यावर्तन ।

अफ्रीका

सृष्टि सर्जना के
विस्मृत पहले प्रहरों में
अनसधे करों से जिसे रचा
और अपूरण देख सर्जना
झुंझलाया विधना,
काट क्रोध से प्रलय पूर्व से अलग कर दिया
वह खंडित
अभिशापित
पूरब के सहज सहोदर तुम अफ्रीका।

सभी ओर की गहन उपेक्षा से प्रजनित
घनीभूत एकाकीपन में
तुमने ऐसे राज सजोये
जिनका भेद नहीं मिल पाता,
जल थल के टेढ़े-मेढ़े संकेत
जिन्हें पढ़ना मुश्किल।

कुदरत का यह छुपा हुआ जादू
तुम्हारे अंतर्मन में
थिरकता जंतर-मंतर,
चेतन से दूर
कहीं अवचेतन में।

तुम पहने ही रहे
कुरूपता का छद्मी वेष
अक्सर भयानकता पर करने,
भय को सहज विजय करने को
तुम तो स्वयं हो गये भयानक,
घोर अगोचर अफ्रीका

भारत का सम्मान सजाती
सीमा उसकी पुण्यमयी है।

शांति मुक्ति की पुन: पताका
इस धरती पर हम फहरायेंगे,
सुख वैभव की मा धरती पर
हम फिर फसलें सरसायेंगे।

पथ से भ्रष्ट नहीं होते हम
जो चिर पावन मूल्य विधायक,
नहीं शक्ति से कभी झुकेगा
भारत जन-मन-गण अधिनायक।

अफ्रीका

सृष्टि सर्जना के
विस्मृत पहले प्रहरों मे
अनसधे करो से जिसे रचा
और अपूरण देख सर्जना
झुंझलाया विधना .
मारे क्रोध से अलख पूर्व से अलग कर दिया
वह खंडित
अभिशापित
पूरब के सहज सहोदर तुम अफ्रीका।

सभी ओर की गहन उपेक्षा से प्रजनित
घनीभूत एकाकीपन मे
तुमने ऐसे राज सजोये
जिनका भेद नहीं मिल पाता ,
जल थल के टेढ़े - मेढ़े संकेत
जिन्हे पढ़ना मुश्किल ।

कुदरत का यह छुपा हुआ जादू
तुम्हारे अंतर्मन मे
विरचता जंतर - मंतर ,
चेतन से दूर
कहीं अवचेतन मे ।

तुम पहले ही रहे
कुरूपता का छली वेष
व्यंग्य मानवता पर करने ,
मन को सहज विजय करने को
तुम तो स्वयं हो गये भयानक ,

भारत का सम्मान सजाती
सीमा उसकी पुण्यमयी है।

शांति मुक्ति की पुनः पताका
इस धरती पर हम फहरायेंगे,
सुख वैभव की मा धरती पर
हम फिर फसलें सरसायेंगे।

पथ से भ्रष्ट नहीं होते हम
जो चिर पावन मूल्य विधायक,
नहीं शक्ति से कभी झुकेगा
भारत जन-मन-गण अधिनायक।

आओ तुम
ओ भाग्य - विधायक घड़ियों के कवि
इस पद - दलित
अबला अफ्रीकी भूमि से
क्षमा मांग लो,
होने दो ये शब्द क्षमा के
अन्तिम स्वर,
रोग ग्रस्त महा द्वीप के
स्वप्नाविष्ट चीत्कार मे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इसी शीर्षक की
कविता के अंग्रेजी संस्करण का अनुवाद

इसीलिए तो सदा प्रताड़ित
अन - पहचानी रही तुम्हारी मानवता,
पद दलित तुम्हें किया बधिकों ने
जो अधिक तुम्हारे हिंस्र - भेड़ियों से भी हिंसक,
जिनका गर्व अधिक अंधा है
तुमको घेरे अंधकार से।

सभ्यों की दानवी पिपासा
ने नग्न नृत्य कर
तुम्हें पी लिया,
तुम रोये तो कंठ रुद्ध कर दिया
और वनों की सघन - पंक्तियां
अश्रु रक्त से स्नात हो गईं,
लुटेरों के बूटों की कीलों ने
छोड़े अमिट चिह्न
तुम्हारी अभिशापित
इतिहासों की राहों पर।

उधर उदधि के पार
नगर नगर में ग्राम ग्राम में
गुंजित गिर्जों के घंटों के मधु स्वर,
मा की ममतामयी बांह में
सुनते लोरी के गीत सुहाने
स्वप्निल शिशु
कवि मनीषी गीत गा रहे सुन्दरता के।

आज डूबते सूरज की घुटती किरणों से आच्छादित
पश्चिमी क्षितिज,
घुटता दम
अंधकार का दैत्य
मरणासन्न दिवस का मृत्यु गीत गा रहा।

आओ तुम
ओ भाग्य - विधायक घड़ियों के कवि
इस पद - दलित
अबला अफ्रीकी भूमि से
क्षमा माग लो,
होने दो ये शब्द क्षमा के
अन्तिम स्वर,
रोग ग्रस्त महा द्वीप के
स्वप्नाविष्ट चीत्कार में।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इसी शीर्षक की
कविता के अंग्रेजी संस्करण का अनुवाद

मुराद

मेरे दिल की यह छोटी सी मुराद है
कि आदम की दुनिया को आदमी चाहिए,
आला दिमाग़ लासानी जिगर सच्चा ईमान
और जिसकी बेताब मुट्ठियों में कशिश भरी हो।

ऐसा इंसान जिसे ओहदे का रश्क मुर्दा न बना दे
ऐसा इंसान जिसे हुकूमत का सितम झुका न सके,
ऐसा इंसान जिसके अपने ख़याल अपनी औक़ात हो
जिसके दिल में दिलेरी औ' मन में लगन हो,
जिसका अदब हो जिसकी आबरू हो
जिसकी ज़ुबान का एतबार हो।

ऐसा इंसान जो गुमराह करने वाले रहनुमा से लोहा ले सके
रहनुमा के अहमक चापलूसों को ठुकरा सके,
अधी रैयत के सड़े विश्वासों के बीच रहकर भी
जो कीचड़ और कोहरे से ऊपर हो
आफ़ताब की तरह तेज औ' चमकता हुआ
बुलन्द और बेदाग़।

आज आदम की दुनिया में आदमी नहीं है
ऊंचे ऊंचे ओहदे और करतब छोटे,
नाम रोशन और करतूतें काली
परले दर्जे की खुदगर्जी और सेवा का बहाना।

दौलत की रोशनी में दिल बुझ गया है
मिकरों की मन मन में धड़कन सो गई है,
आज़ादी के जश्नों में आज़ार सो रहे हैं
जुल्मों की हुकूमत है इन्साफ़ सो रहा है

आदम की दुनिया में आदमी खो रहा है,
मेरे दिल की यह छोटी सी मुराद है
कि आदम की दुनिया को आदमी चाहिए।

जे. बी. एन. की एक अंग्रेजी कविता पर आधारित